

कृष्णदत्त अवस्थी

बनाम

मप्र राज्य एवं अन्य.

(सिविल अपील संख्या - 4806/2011)

29 जनवरी 2025

(न्यायमूर्ति श्री ऋषिकेश रॉय, सुधांशु धूलिया और एस.वी.एन. भट्टी)

विचारणीय बिंदु

क्या चयन प्राकृतिक न्याय के प्रथम अंग, अर्थात् पक्षपात के विरुद्ध नियम के उल्लंघन के कारण दूषित है; क्या यह दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर दिए जाने के सिद्धांत के उल्लंघन का मामला है; तथा क्या दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर दिए जाने के सिद्धांत के उल्लंघन के दावे में सफल होने के लिए पूर्वाग्रह को सिद्ध करना आवश्यक है; और क्या मूल स्तर पर दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर दिए जाने के सिद्धांत का उल्लंघन, पुनरीक्षण स्तर पर सुधारा जा सकता है।

शीर्ष टिप्पणियाँ ¹

“पंचायत राज अधिनियम एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993 — प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत — पक्षपात के विरुद्ध नियम (निमो जुडेक्स इन कौसा सुआ) — अपीलार्थीगण की विद्यालय शिक्षक (शिक्षा कर्मी वर्ग -III) के रूप में नियुक्तियों की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई कि चयन प्रक्रिया पक्षपात से दूषित थी, क्योंकि चयन समिति के कुछ सदस्य अपीलार्थीगण के निकट संबंधी थे — सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीश की पीठ द्वारा विभाजित निर्णय, जिसमें एक न्यायाधीश ने यह माना कि अपीलार्थीगण का चयन पक्षों को सुनवाई का अवसर दिए जाने के सिद्धांत के उल्लंघन में, त्रुटिपूर्वक अपास्त किया गया था, जबकि दूसरे न्यायाधीश ने अपीलार्थीगण की नियुक्ति को रद्द किए जाने को सही ठहराया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्राकृतिक न्याय का प्रथम अंग, अर्थात् ‘पक्षपात के विरुद्ध नियम’, सिद्ध हो गया था, क्योंकि पक्षपात की युक्तिसंगत संभावना स्थापित हो गई थी — मामला वृहत्तर पीठ के समक्ष:”

अभिनिर्धारित: वर्तमान मामला पक्षपात के आरोप/मात्र पक्षपात के संदेह का है, जिसका कोई ठोस आधार नहीं है — जनपद पंचायत ने सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया, जिसके अनुसार जिन सदस्यों के निकट संबंधी उम्मीदवारों में थे, वे साक्षात्कार प्रक्रिया से स्वयं को अलग करेंगे — वास्तव में, संबंधित सदस्यों ने स्वयं को अलग कर लिया था और उन्होंने न तो साक्षात्कार में भाग लिया और न ही कोई अंक प्रदान किए; अतः पक्षपात की युक्तिसंगत संभावना का अनुमान युक्तिसंगत रूप से नहीं किया जा सकता — चयन पक्षपात के विरुद्ध

नियम के उल्लंघन के आधार पर दूषित नहीं है — मध्य प्रदेश पंचायत (अपील एवं पुनरीक्षण) नियम, 1995। [कण्डिका 29, 30, 35, 37]

प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत – सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर दिया जाना – उल्लंघन – कलेक्टर द्वारा अपीलार्थीगण की नियुक्ति को बिना कोई सूचना जारी किए अपास्त कर दिया गया, यह कहते हुए कि भर्ती पक्षपात से दूषित थी क्योंकि चयन समिति के कुछ सदस्य अपीलार्थीगण के निकट संबंधी थे – क्या यह सुनवाई का अवसर दिए जाने के सिद्धांत के उल्लंघन का मामला है और क्या सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर दिए जाने के सिद्धांत के उल्लंघन के दावे में सफल होने के लिए पूर्वाग्रह का प्रदर्शन आवश्यक है?

अभिनिर्धारित: वर्तमान मामले में सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर दिया जाने के सिद्धांत का घोर उल्लंघन हुआ है – सूचना के अभाव में यह उल्लंघन प्रक्रिया की निष्पक्षता के मूल आधार पर प्रहार करता है, जिससे निर्णय अवैध हो जाता है – चयनित अभ्यर्थियों को पक्षकार नहीं बनाया गया और वे कलेक्टर के समक्ष चयन का प्रतिवाद नहीं कर सके – प्रारंभिक चरण में सुनवाई के अवसर के अभाव ने चयनित अभ्यर्थियों को यह दिखाने से वंचित कर दिया कि किसी भी रिश्तेदार ने उनके चयन को प्रभावित नहीं किया था – चयन का दूषित होना न केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था बल्कि उस स्पष्ट वैधानिक प्रावधान के भी प्रतिकूल था, जिसमें कारण बताने का अवसर तथा प्रति - रक्षा प्रस्तुत करने का अवसर आवश्यक था – पूर्वाग्रह का सिद्धांत सामान्य नियम के अपवाद के रूप में समझा जाना चाहिए और उसे सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता – पंचायत राज अधिनियम एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993। [कण्डिका 29, 35, 54]

प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत – यदि प्रारंभिक चरण में उसका निषेध किया गया हो, तो अपीलीय निकाय द्वारा निवारण किया जा सकता है – कलेक्टर द्वारा अपीलार्थीगण की नियुक्ति को बिना कोई सूचना जारी किए अपास्त कर दिया गया – अपीलार्थीगण द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी गई – उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई, रिट याचिका भी अस्वीकार कर दी गई – उसके विरुद्ध दायर रिट अपील भी खारिज कर दी गई – अंततः सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा विभाजित निर्णय दिया गया – मामला वृहत्तर पीठ के समक्ष।

अभिनिर्धारित: प्रारंभिक चरण में उत्पन्न दोष को सामान्यतः अपीलीय चरण में दूर नहीं किया जा सकता – यहाँ तक कि उन मामलों में भी जहाँ अपीलीय चरण पर 'पूर्ण अधिकारिता' उपलब्ध हो सकता है, न्यायालयों के पास यह विवेकाधिकार होना चाहिए कि वे सुनवाई का अवसर प्रदान करने हेतु मामले को मूल चरण पर वापस भेज सके – अतः वर्तमान मामले में अपीलार्थीगण के चयन को अपास्त करने का एकपक्षीय निर्णय दोषपूर्ण था – हालाँकि, चूँकि

चयन वर्ष 1998 से संबंधित है और अपीलार्थी अंतरिम आदेशों के अंतर्गत पच्चीस वर्ष से अधिक समय से लगातार पद पर बने हुए हैं तथा अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं, इसलिए मामले को नई जाँच हेतु वापस भेजना व्यावहारिक नहीं है और यह नियुक्त व्यक्तियों के साथ अन्याय होगा - पंचायत राज अधिनियम एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993। [अनुच्छेद 67, 71]

प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - प्रारंभिक चरण में उसका निषेध निर्णय पर पहुँचने की प्रक्रिया को दूषित कर देता है, जिससे बाद के चरणों में त्रुटिपूर्ण आदेश पारित होते हैं - कलेक्टर द्वारा अपीलार्थीगण की नियुक्ति को बिना कोई सुचना जारी किए अपास्त कर दिया गया - अपीलार्थीगण द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी गई - उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई, रिट याचिका भी खारिज कर दी गई - उसके विरुद्ध दायर रिट अपील भी खारिज कर दी गई - अंततः सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा विभाजित निर्णय दिया गया - मामला वृहत्तर पीठ के समक्ष।

अभिनिर्धारित: कलेक्टर तथा पुनरीक्षण में आयुक्त द्वारा पारित आदेश व्यवहारतः एक-समान हैं - प्रारंभिक चरण में दी गई प्रभावहीन सुनवाई ने निर्णय की संपूर्ण प्रक्रिया को दूषित कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप बाद के चरणों में त्रुटिपूर्ण आदेश पारित हुए - प्रभावित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर प्रदान करना प्रशासनिक प्राधिकरणों द्वारा तथ्यों या अन्य सुसंगत परिस्थितियों की अनभिज्ञता में निर्णय लिए जाने के जोखिम को न्यूनतम करता है, क्योंकि इससे सभी प्रासंगिक मुद्दे प्रकाश में आ पाते हैं - यह प्रक्रिया न केवल प्रशासन को सही निर्णय पर पहुँचने में सहायता करती है बल्कि न्यायालयों को भी ऐसे कार्यों की अधिक प्रभावी ढंग से समीक्षा करने में सक्षम बनाती है - पंचायत राज अधिनियम एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993 - मध्य प्रदेश पंचायत (अपील एवं पुनरीक्षण) नियम, 1995 - नियम 5(ख)। [कण्डिका 66]

प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार (पक्षों को सुनवाई का अवसर दिए जाने का सिद्धांत) - का उद्देश्य - पक्षपात के आरोप को सिद्ध किए जाने के लिए निष्पक्ष सुनवाई अनिवार्य है। [कण्डिका 68, 69]

आवश्यकता का सिद्धांत - प्रयोज्यता - आवश्यकता के सिद्धांत के अनुप्रयोग हेतु निष्पक्षता की धारणा को संदर्भ-विशेष होना चाहिए - चर्चा की गयी। [कण्डिका 30]

प्रशासनिक कार्यवाहियों की न्यायिक समीक्षा, चर्चा की गयी - विवेचित - विशेषज्ञ निकायों द्वारा किए गए चयन - रिट अधिकारिता के अंतर्गत उनमें हस्तक्षेप की सीमा। [अनुच्छेद 14, 15]

स्टेट बैंक ऑफ़ पटियाला बनाम एसके शर्मा [1996] 3 एस. सी. आर. 972 : (1996) 3 एस. सी. सी. 364; एके क्रेपाक बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया [1970] 1 एस. सी. आर. 457 : (1969) 2 एस. सी. सी. 262; मोहिंदर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त [1978] 2 एस. सी. आर. 272 : (1978) 1 एस. सी. सी. 405; स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया [1981] 2 एस. सी. आर. 533 : (1981) 1 एस. सी. सी. 664; मेनका गांधी बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया [1978] 2 एस. सी. आर. 621 : (1978) 1 एस. सी. सी. 248; एसएल कपूर बनाम जगमोहन [1981] 1 एस. सी. आर. 746 : (1980) 4 एस. सी. सी. 379; धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम डिप्टी कमिश्नर ऑफ़ सेंट्रल एक्साइज, गुवाहाटी और अन्य [2015] 6 एस. सी. आर. 437 : (2015) 8 एस. सी. सी. 519; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुधीर कुमार सिंह [2020] 13 एस. सी. आर. 571 : (2021) 19 एस. सी. सी. 706; माध्यमम ब्रॉडकास्टिंग लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया [2023] 10 एस. सी. आर. 595 : (2023) 13 एस. सी. सी. 401; इंस्टीट्यूट ऑफ़ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स बनाम एल. के. रत्ना [1986] 3 एस. सी. आर. 1049 : (1986) 4 एस. सी. सी. 537; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नूह 1958 एस. सी. आर. 595; मैसूर स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम मिर्जा कासिम [1977] 2 एस. सी. आर. 282 : (1977) 2 एस. सी. सी. 457; चरण लाल साहू बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया [1989] सप्लीमेंट। 2 एस. सी. आर. 597 : (1990) 1 एस. सी. सी. 613; जे. मोहपात्रा एंड कंपनी बनाम उड़ीसा राज्य [1985] 1 एस. सी. आर. 322 : (1984) 4 एस. सी. सी. 103; अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य [1985] सप्लीमेंट 1 एस. सी. आर. 657 : (1985) 4 एस. सी. सी. 417; कीर्ति देशमुखकर बनाम भारत संघ [1990] सप्लीमेंट 1 एस. सी. आर. 355 : (1991) 1 एस. सी. सी. 104; गुरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (1997) 10 एस. सी. सी. 641; उत्कल विश्वविद्यालय बनाम नृसिंह चरण सारंगी [1999] 1 एस. सी. आर. 19 : (1999) 2 एस. सी. सी. 193; तमिलनाडु सरकार बनाम मुनुस्वामी मुदलियार [1988] सप्लीमेंट 2 एस. सी. आर. 673 : (1988) सप्लीमेंट एस. सी. सी. 651 : ए.आई.आर. 1988 एस. सी. 2232; बिहार राज्य खनिज विकास निगम बनाम एनकॉन बिल्डर्स (I) (पी) लिमिटेड [2003] सप्लीमेंट 2 एस. सी. आर. 812 : (2003) 7 एस. सी. सी. 418; आंध्र प्रदेश राज्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी [1996] 3 एस. सी. आर. 721 : (1996) 3 एस. सी. सी. 709; टाटा सेलुलर बनाम भारत संघ [1994] सप्लीमेंट 2 एस. सी. आर. 122 : (1994) 6 एस. सी. सी. 651; मोहम्मद मुस्तफा बनाम भारत संघ [2021] 11 एस. सी. आर. 163 : (2022) 1 एस. सी. सी. 294; दलपत आबासाहेब सोलुंके बनाम बी.एस. महाजन (1990) 1 एस. सी. सी. 305; बद्रीनाथ बनाम तमिलनाडु राज्य [2000] सप्लीमेंट 3 एससीआर 573 : (2000) 8 एससीसी 395; राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य एवं तंत्रिका विज्ञान संस्थान बनाम के. कल्याण रमन (1992) सप्लीमेंट। 2 एससीसी 481; आई.पी.एस. दीवान बनाम भारत संघ [1995] 2 एससीआर 532: (1995) 3 एससीसी 383; यूपीएससी बनाम हिरण्यलाल देव [1988] 3 एससीआर 302: (1988) 2 एससीसी 242; एम.वी.

थिमैया बनाम यूपीएससी [2007] 13 एससीआर 624: (2008) 2 एससीसी 119; यूपीएससी बनाम एम. साथिया प्रिया [2018] 6 एससीआर 701: (2018) 15 एससीसी 796; ओम कुमार बनाम भारत संघ [2000] पूरक। 4 एससीआर 693: (2001) 2 एससीसी 386; 2001 एससीसी (एल एंड एस) 1039; भारत संघ बनाम जी. गणयुथम [1997] पूरक। 3 एससीआर 549: (1997) 7 एससीसी 463: 1997 एससीसी (एल एंड एस) 1806; एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ [1990] पूरक। 1 एससीआर 44 : (1990) 4 एससीसी 594; सीमेंस इंडी. एंड एम.एफ.जी कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया [1976] सप्लीमेंट 1 एससीआर 489 : (1976) 2 एससीसी 981; सीसीआई बनाम सेल [2010] 11 एससीआर 112: (2010) 10 एससीसी 744; क्रांति एसोसिएट्स (पी) लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान [2010] 10 एससीआर 1070: (2010) 9 एससीसी 496; रेलवे इलेक्ट्रिफिकेशन बनाम ईसीआई एसपीआईसी एसएमओ एमसीएमएल (जेवी) एक संयुक्त उद्यम कंपनी, 2024 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 3219; मानक लाल बनाम डॉ. प्रेम चंद सिंघवी [1957] 1 एस. सी. आर. 575 : 1957 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 10; रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ [1988] 1 एस. सी. आर. 512 : (1987) 4 एस. सी. सी. 611; रतन लाल शर्मा बनाम प्रबंध समिति, डॉ. हरि राम (सह-शिक्षा) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय [1993] 3 एस. सी. आर. 863 : (1993) 4 एस. सी. सी. 10; एस पार्थसारथी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [1974] 1 एस. सी. आर. 697 : (1974) 3 एस. सी. सी. 459; एसके गोल्फ और अन्य बनाम भुबन चंद्र पांडा, 1990 एस. सी. सी. ऑनलाइन कलकत्ता 264; जीएन नायक बनाम गोवा विश्वविद्यालय [2002] 1 एस. सी. आर. 636 : (2002) 2 एस. सी. सी. 712; भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल [1985] सप्लीमेंट 2 एस. सी. आर. 131 : (1985) 3 एस. सी. सी. 398; चरणजीत सिंह बनाम हरिंदर शर्मा (2002) 9 एस. सी. सी. 732; जाविद रसूल भट बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य (1984) 2 एस. सी. सी. 682; जसवंत सिंह नेरवाल बनाम पंजाब राज्य [1991] 1 एस. सी. आर. 411 : (1991) सप्लीमेंट 1 एस. सी. सी. 313; राज्य सरकार बेघर हरिजन कर्मचारी संघ बनाम कर्नाटक राज्य [2000] सप्लीमेंट 5 एस. सी. आर. 483 : (2001) 1 एस. सी. सी. 610; ईस्ट इंडिया कमर्शियल कंपनी लिमिटेड बनाम कलेक्टर ऑफ कस्टम्स [1963] 3 एस. सी. आर. 338 : ए.आई.आर. 1962 एस. सी. 1893; उमा नाथ पांडे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [2009] 4 एस. सी. आर. 374 : (2009) 12 एस. सी. सी. 40; फरीद अहमद बनाम अहमदाबाद नगर पालिका [1977] 1 एस. सी. आर. 71 : ए.आई.आर. 1976 एस. सी. 2095; श्री मंदिर सीतारामजी बनाम दिल्ली सरकार [1975] 1 एस. सी. आर. 597 : (1975) 4 एस. सी. सी. 298; मैसूर एस आर टी कॉर्प बनाम मिर्जा कासिम [1977] 2 एस. सी. आर. 282 : ए.आई.आर. 1977 एस. सी. 747; जयंतीलाल रतनचंद शाह बनाम भारतीय रिज़र्व बैंक [1996] अनुपूरक 4 एस. सी. आर. 443 : (1996) 9 एस. सी. सी. 650; यूनाइटेड प्लांटर्स एसोसिएशन ऑफ सदरन इंडिया बनाम केजी संगमेश्वरन [1997] 2 एस. सी. आर. 756 : (1997) 4 एस. सी. सी. 741; ओल्गा टेलिस बनाम

बॉम्बे म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन [1985] अनुपूरक 2 एस. सी. आर. 51 : (1985) 3 एस. सी. सी. 545; अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम मंसूर अली खान [2000] अनुपूरक 2 एस. सी. आर. 684 : (2000) 7 एस. सी. सी. 529 – संदर्भित।

हीरा लाल पटेल बनाम मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जिला पंचायत, सारंगढ़ (1998) 2 म.प्र. डब्ल्यू.एन. 39; लक्ष्मीधर बनाम उड़ीसा राज्य, ए.आई.आर. 1974 उड़ीसा 127; काशीराम डालमिया बनाम राज्य, ए.आई.आर. 1978 पी ए टी 265; जी राजलक्ष्मी बनाम अपीलीय प्राधिकरण, ए.आई.आर. 1980 आंध्र प्रदेश 100; सेराजुद्दीन कंपनी बनाम उड़ीसा राज्य, ए.आई.आर. 1974 कलकत्ता 296 – संदर्भित। काउंसिल ऑफ सिविल सर्विस यूनियंस बनाम मिनिस्टर फॉर सिविल सर्विस, 1985 ए.सी. 374; डाइम्स बनाम द प्रोपराइटर ऑफ द गैंड जंक्शन कैनाल (1852) 3 एच.एल.सी. 759; आर बनाम ससेक्स जस्टिस एक्स पार्ट मैकार्थी [1924] 1 के बी 256; मेट्रोपॉलिटन प्रॉपर्टीज कंपनी (एफजीसी) बनाम लैनन (1969) 1 क्यू.बी. 577; पोर्टर बनाम मैगिल (2002) 1 ऑल इ.आर. 465; रिज बनाम बाल्डविन [1964] ए.सी. 40; अन्नामथोडो बनाम ऑयलफील्ड वर्क्स ट्रेड यूनियन [1961] ए.सी. 945 (पी.सी.); लेरी बनाम नेशनल यूनियन ऑफ व्हीकल बिल्डर्स (1970) 2 ऑल इ.आर. 713; केल्विन बनाम कैर (1979) 2 डब्ल्यू.एल.आर. 755; लॉयड बनाम मैकमोहन (1987) 1 ए.सी. 625; आर बनाम गफ, 1993 ए.सी. 646; ऑस्ट्रेलियन वर्क्स यूनियन बनाम बोवेन (नंबर 2) (1948) 77 सी.एल.आर. 601 – का उल्लेख किया गया है।

उद्धृत पुस्तकें और पत्रिकाएँ

एच. डब्ल्यू. आर. वेड, एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ (5 वां संस्करण); एच डब्ल्यू आर वेड और सी एफ फोर्सिथ, एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 11 वां संस्करण, 2014); आई.पी. मैसी, एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ (8 वां संस्करण, 2012); लॉरेंस एच. ट्राइब, 'अमेरिकन कॉन्स्टिट्यूशनल लॉ' (द फाउंडेशन प्रेस 1978) – संदर्भित है।

अधिनियमों की सूची

पंचायत राज अधिनियम और ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993; मध्य प्रदेश पंचायत (अपील और पुनरीक्षण) नियम, 1995।

कीवर्ड की सूची

दूसरे पक्ष को भी सुनवाई का अवसर दिए जाने का सिद्धांत; पक्षपात के विरुद्ध नियम; पक्षपात का आरोप / पक्षपात का मात्र संदेह; प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत; कोई व्यक्ति अपने ही मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता; चयन; नियुक्ति; विद्यालय शिक्षक; शिक्षा कर्मों; चयन समिति; अभ्यर्थियों के रिश्तेदार; परिवार के सदस्य; चयन दूषित नहीं हुआ; चयन में हस्तक्षेप; प्रक्रिया संबंधी अनियमितता; निष्पक्ष सुनवाई का नियम; स्वयं को अलग करना; स्वयं को अलग करने की प्रक्रिया; स्वयं को अलग करने संबंधी प्रस्ताव; आवश्यकता का सिद्धांत; प्रशासनिक कार्यवाहियों की न्यायिक समीक्षा; कलेक्टर; अप्रभावी सुनवाई; सुचना जारी नहीं किया गया; चयनित अभ्यर्थियों को सुचना जारी किए बिना; सुनवाई के अवसर का अभाव; सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन; पूर्वाग्रह; पूर्ण अधिकार-क्षेत्र।

किससे उद्भूत मामला

सिविल अपील की अधिकारिता: सिविल अपील संख्या 4806/2011

माननीय उच्च न्यायालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश के दिनांक 15.12.2008 के निर्णय एवं आदेश से

रिट अपील संख्या 892/2008 में

साथ में

सिविल अपील संख्या 4807, 4808 और 4809/2011

पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्तागण

अपीलार्थी की ओर से अधिवक्तागण:

विवेक तन्खा, वरिष्ठ अधिवक्ता; नीरज शेखर; श्रीमती क्षमा शर्मा; रामेन्द्र विक्रम सिंह; दिव्यम सिक्का; अमरेन्द्र सिंह;

राम बचन चौधरी; राजेश मोर्य सिंह; राजेश मोर्य।

प्रतिवादिगण की ओर से अधिवक्तागण:

सुश्री मृणाल गोपाल एल्कर; सौरभ सिंह; शिव विनायक गुप्ता;

सुश्री श्रुति वर्मा; अवधेश कुमार सिंह; संजय कुमार विसेन;

पार्थ सारथी; ज्ञानेंद्र विक्रम सिंह; सुश्री सौम्या गुलाटी।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

न्यायमूर्ति श्री ऋषिकेश रॉय

1. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विवेक तन्खा को सुना गया। प्रत्यर्थियों का प्रतिनिधित्व सुश्री मृणाल गोपाल एल्कर, विद्वान अधिवक्ता और श्री अवधेश कुमार सिंह, विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया।
2. इस न्यायालय के दो विद्वान न्यायाधीशों द्वारा 4.4.2024 को दिए गए विभाजित निर्णय के कारण यह मामला इस वृहद पीठ के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यह मामला वर्ष 1998 में जनपद पंचायत, गौरिहार में स्कूल शिक्षक (शिक्षाकर्मि ग्रेड III) के पद पर की गई नियुक्तियों की वैधता से संबंधित है। इस न्यायालय में दस व्यक्तियों द्वारा चार सिविल अपीलों दायर की

गई, जो अभिकथित रूप से चयन समिति के सदस्यों के रिश्तेदार हैं और जिन्हें 249 शिक्षाकर्मियों की अंतिम चयन सूची में शामिल किया गया था।

3. न्यायमूर्ति जेके माहेश्वरी ने शिक्षाकर्मियों के चयन को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के प्रथम अंग, अर्थात् पक्षपात के विरुद्ध नियम के उल्लंघन के कारण अपास्त करने के निष्कर्ष को बरकरार रखा, किन्तु न्यायमूर्ति केवी विश्वनाथन ने अन्य बातों के साथ-साथ निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार के उल्लंघन का हवाला देते हुए चयन को बरकरार रखा। इसलिए, इस मामले में, हम प्राकृतिक न्याय के दो मूलभूत सिद्धांतों, अर्थात् पक्षपात के विरुद्ध नियम (कोई भी व्यक्ति अपने मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता) और निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार (सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने का सिद्धांत) के बीच संघर्ष का सामना कर रहे हैं।

1. सुसंगत तथ्य

4. प्रारंभ में, कुंवर विजय बहादुर सिंह बुंदेला ने कलेक्टर, जिला छतरपुर के समक्ष अपील दायर करके चयन सूची तैयार करने को चुनौती दी, जिन्होंने 31.8.1998 के आदेश द्वारा चयन सूची का अभिखण्डन कर दिया और मामले को नए सिरे से विचार के लिए प्रेषित किया। इसके बाद, 16.9.1998 को 249 उम्मीदवारों की एक नई चयन सूची, जिसमें अपीलार्थिगण (और चार अन्य) के नाम शामिल थे, प्रकाशित की गई और नियुक्ति आदेश 17.9.1998 को जारी किया गया। अपीलार्थिगण के चयन और नियुक्ति को एक असफल अभ्यर्थी - अर्चना मिश्रा (प्रतिवादी क्रमांक 4) ने मध्य प्रदेश पंचायत (अपील एवं पुनरीक्षण) नियम, 1995 (संक्षेप में "अपील एवं पुनरीक्षण नियम, 1995") की धारा 3 के अंतर्गत कलेक्टर, जिला छतरपुर, मध्य प्रदेश के समक्ष चुनौती यह आरोप लगाते हुए दी कि चयन समिति की संरचना के कारण चयन प्रक्रिया में भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार और पक्षपात के तत्व आ गये हैं। कलेक्टर ने चुनौती देने वाले के तर्क को स्वीकार करते हुए दिनांक 02.06.1999 के आदेश द्वारा अपीलार्थिगण की नियुक्ति को यह निष्कर्ष निकालते हुए अपास्त कर दिया कि भर्ती पक्षपात और भाई-भतीजावाद के कारण दूषित थी। कलेक्टर ने चयन समिति की संरचना में दोष पाया, जिनमें से कुछ अपीलार्थिगण के कुटुंब के सदस्य थे और यह राय दी कि चयन में अंक प्रदान करना अनुचित था। पंचायत राज अधिनियम एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993 की धारा 40(ग) और धारा 100 (संक्षेप में "अधिनियम, 1993") आधार पर यह उल्लेख किया गया है कि पदाधिकारी अपने नातेदारों को वित्तीय लाभ नहीं पहुँचा सकते। कलेक्टर ने आगे कहा कि:

‘...यह साबित हो गया है कि इन नातेदारों की नियुक्ति विहित प्रक्रिया और योजना के अनुसार नहीं मानी जा सकती और इसलिए, उन्हें बुलाना आवश्यक नहीं है।’

5. हीरा लाल पटेल बनाम मुख्य कार्यपालन अधिकारी¹, जिला पंचायत, सारंगढू मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हुए, कलेक्टर ने चयनितों को नोटिस जारी किए बिना ही यह टिप्पणी की कि यदि नियुक्ति योजना के अनुसार नहीं की जाती है, तो उसे सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना ही समाप्त किया जा सकता है।

6. चयन में उपरोक्त हस्तक्षेप से व्यथित होकर, अपीलार्थीगण ने आयुक्त, राजस्व, सागर संभाग के समक्ष अपील एवं पुनरीक्षण नियम, 1995 की धारा 5 के अधीन एक पुनरीक्षण याचिका दायर की। चयनितों ने तर्क दिया कि उन्हें पक्षकार बनाये बिना और उन्हें सुनवाई का अवसर दिए बिना, कलेक्टर चयन में हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे और यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा। हालाँकि, पुनरीक्षण याचिका को आयुक्त ने दिनांक 14.3.2000 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया। उक्त आदेश के पैरा (6) में, आयुक्त ने कहा कि चयन अधिनियम, 1993 की धारा 40(ग) के विपरीत है। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा दायर उत्तर में उल्लेखित चयन समिति के सदस्यों के साथ अपीलार्थीगण के संबंध की स्वीकृति के आधार पर, गैर-संयोजन और सुनवाई का अवसर न देने के अभिवचन को खारिज कर दिया। आयुक्त के आदेश से व्यथित होकर, नियुक्त व्यक्तियों ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 31.7.2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया। स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एसके शर्मा² के मामले के आधार पर, यह माना गया कि सुनवाई के अवसर की जाँच रिट याचिकाकर्तागण को हुई वास्तविक हानी की कसौटी पर की जानी चाहिए। यह टिप्पणी भी की गयी कि आयुक्त द्वारा पुनरीक्षण चरण में सुनवाई का पूरा अवसर प्रदान किया गया था। विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, मुख्य कार्यकारी अधिकारी के उत्तर से यह स्थापित हुआ कि कुछ चयनित उम्मीदवार श्रीमती पुष्पा द्विवेदी (चयन समिति की अध्यक्ष) के रिश्तेदार थे और इसी प्रकार, श्री स्वामी सिंह (शिक्षा समिति के सदस्य) के करीबी रिश्तेदार जैसे उनकी भाभी, बेटा, बहू और भतीजा भी चयनित उम्मीदवारों में शामिल थे। एकल न्यायाधीश ने ए.के. क्राइपक बनाम भारत संघ³ (संक्षेप में "ए.के. क्राइपक") में इस न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय पर भरोसा किया, जहाँ इस बात पर जोर दिया गया था कि चयन समिति में हितधारक पक्षों की उपस्थिति पक्षपात की एक उचित संभावना पैदा करती है, भले ही प्रत्यक्ष भागीदारी सीमित हो। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया कि भले ही श्रीमती पुष्पा द्विवेदी (अध्यक्ष) और स्वामी सिंह (सदस्य) ने अपने कथित नातेदारों के साक्षात्कारों के दौरान खुद को अलग कर लिया था, समिति में उनकी उपस्थिति सम्पूर्ण चयन प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती थी।

7. इसके बाद अपीलार्थीगण ने एक रिट अपील दायर की, जिसे उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने 15.12.2008 को खारिज कर दिया। खंडपीठ ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि:

‘यद्यपि अपीलार्थीगण के लिए प्रभावित पक्षों को पक्षकार बनाना अनिवार्य था, फिर भी चूँकि प्रभावित पक्षों को पुनरीक्षण न्यायालय और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सभी पहलुओं पर पूर्ण अवसर दिया गया था, इसलिए, हम आदेश अभिखंडन करना और मामले को कलेक्टर के पास वापस भेजना उचित नहीं समझते।’

8. इस न्यायालय के पक्षपात संबंधी निर्णयों⁴ पर भरोसा करते हुए, खंडपीठ ने यह टिप्पणी की कि पक्षपात एक मानसिक स्थिति है और जब संबंध का स्तर काफी निकटता में होता है, तो पक्षपात का अनुमान लगाना ही पड़ता है।

9. इसके बाद जब मामला सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा, तो न्यायमूर्ति केवी विश्वनाथन ने निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थीगण का चयन त्रुटिपूर्ण रूप से अपास्त कर दिया गया था, जो कि 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' के सिद्धांत का उल्लंघन था। यह भी माना गया कि इस सिद्धांत का पालन मूल चरण में ही किया जाना चाहिए। इसके अलावा, अपील एवं पुनरीक्षण नियम, 1995 के नियम 9 का भी अनुपालन नहीं किया गया। यह भी कहा गया कि कलेक्टर एवं आयुक्त के आदेशों में न तो अधिनियम की धारा 40(ग) के स्पष्टीकरण में 'रिश्तेदार' की परिभाषा का कोई संदर्भ दिया गया था और न ही मामले से अलग होने के प्रस्ताव का। न्यायमूर्ति केवी विश्वनाथन ने निष्कर्ष निकाला कि पक्षों को पक्षकार न बनाना सुनवाई का 'बिल्कुल भी अवसर न देने' के बराबर है।

10. दूसरी ओर, न्यायमूर्ति जे.के. माहेश्वरी ने अपीलार्थीगण की नियुक्ति अपास्त करने के निर्णय को बरकरार रखा और यह राय दी कि प्राकृतिक न्याय का पहला अंग, अर्थात् 'पक्षपात के विरुद्ध नियम', निर्विवादित रूप से सिद्ध हो चुका था, क्योंकि पक्षपात की युक्तियुक्त संभावना स्थापित हो चुकी थी। पक्षकार न बनाए जाने की दलील को एक व्यर्थ औपचारिकता माना गया। आगे यह भी माना गया कि जब तक पक्षपात सिद्ध न हो जाए, प्रारंभिक चरण में केवल गैर-संयोजन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं करता।

II. निवेदन

11. अपीलार्थीगण का मूल तर्क यह है कि चूँकि उनकी नियुक्तियाँ बिना उनकी कोई सुनवाई किए और प्रतिवादी संख्या 4 (अर्चना मिश्रा) द्वारा चुनौती में उन्हें पक्षकार बनाए बिना अपास्त कर दी गई, इसलिए अपीलार्थीगण के विरुद्ध लिया गया प्रतिकूल विनिश्चयन कानूनी रूप से कायम रखने योग्य नहीं है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विवेक तन्खा ने तर्क दिया कि प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा अनुचित चयन के बारे में किये गए अभिकथन का आधार एक गलत विवरण था। यह विनिर्दिष्ट रूप से बताया गया है कि उम्मीदवारों के किसी भी रिश्तेदार ने अपीलार्थीगण के चयन में भाग नहीं लिया था। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि संबंधित व्यक्तियों ने चयन को प्रभावित करने के लिए कोई अंक नहीं दिए थे। विशेष रूप से चुनौती देने वाले और चयनितों द्वारा प्राप्त अंकों का उल्लेख करते हुए, अपीलार्थी तर्क देते हैं कि यह एक निष्पक्ष चयन था और हस्तक्षेप नहीं हुआ था।

12. दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता मृणाल गोपाल एल्कर और अवधेश कुमार सिंह ने अधिनियम, 1993 की धारा 40(ग) का हवाला देते हुए यह तर्क दिया कि उक्त धारा यह प्रावधान करती है कि 'कोई भी पदाधिकारी अपने नातेदारों को वित्तीय

लाभ नहीं पहुँचाएगा'। उनके अनुसार, चयन प्रक्रिया में निकट संबंधियों की उपस्थिति ने शिक्षाकर्मियों के चयन की प्रक्रिया को दूषित कर दिया। उन्होंने यह तर्क दिया कि यदि कोई हो, तो 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' के सिद्धांत का अननुपालन, यदि कोई हो, को आयुक्त के समक्ष हुई कार्यवाही द्वारा ठीक कर दिया गया, जिसमें अपीलार्थीगण को पूरा अवसर दिया गया। इस आधार पर, यह निवेदन किया गया कि मूल चरण में कलेक्टर द्वारा सुनवाई का अवसर न देना अप्रासंगिक था। प्रतिवादी के अनुसार, चयन में पक्षपात की युक्तियुक्त संभावना समिति के सदस्यों और चयनित उम्मीदवारों के बीच घनिष्ठ संबंध से स्थापित होती है, जिन्हें साक्षात्कार प्रक्रिया में अन्य उम्मीदवारों की तुलना में उच्च अंक दिए गए हैं।

III. विवाद्यक

13. उपरोक्त निवेदनो के आधार पर, निम्नलिखित व्यापक विवाद्यक हमारे द्वारा विचारार्थ हैं:

क. क्या चयन प्राकृतिक न्याय के प्रथम अंग, अर्थात् पक्षपात के विरुद्ध नियम, के उल्लंघन के कारण दूषित है?

ख. क्या यह 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' के सिद्धांत के उल्लंघन का मामला है? क्या 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' के सिद्धांत के उल्लंघन के दावे को सफल बनाने के लिए पक्षपात का प्रदर्शन आवश्यक है?

ग. क्या मूल चरण में 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' के सिद्धांत के उल्लंघन को पुनरीक्षण चरण में ठीक किया जा सकता है?

IV. विचार विमर्श

14. प्रशासनिक कार्यों का न्यायिक पुनर्विलोकन, अवैधता, युक्तियुक्त न होने या तर्कहीनता और प्रक्रियात्मक अनियमितता के आधार पर अनुमेय है⁵। लॉर्ड डिप्लॉक⁶ ने न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए उपरोक्त प्रत्येक आधार का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार किया है:

"न्यायिक पुनर्विलोकन के आधार के रूप में "अवैधता" से मेरा तात्पर्य है कि निर्णय लेने वाले को उस कानून को सही ढंग से समझना चाहिए जो उसकी निर्णय लेने की शक्ति को विनियमित करता है और उसे लागू करना चाहिए। उसके पास शक्ति है या नहीं, यह सर्वोत्तम रूप से एक न्यायसंगत प्रश्न है जिसका निर्णय, विवाद की स्थिति में, उन व्यक्तियों अर्थात् न्यायाधीशों द्वारा लिया जाना चाहिए, जिनके द्वारा राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

"तर्कहीनता" से मेरा तात्पर्य उस चीज़ से है जिसे अब संक्षेप में "वेडनसबरी [एसोसिएटेड प्रोविंशियल पिक्चर हाउसेस बनाम वेडनसबरी कॉर्पोरेशन, (1948) 1 के बी 223 (सी.ए.)] युक्तियुक्त न होना" कहा जा सकता है। यह उस निर्णय पर लागू होता है

जो तर्क या स्वीकृत नैतिक मानकों की इतनी अवहेलना करता है कि कोई भी समझदार व्यक्ति, जिसने निर्णय किए जाने वाले प्रश्न पर अपने विवेक का प्रयोग किया होगा, उस पर नहीं पहुँच सकता। कोई निर्णय इस श्रेणी में आता है या नहीं, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देने के लिए न्यायाधीशों को अपने प्रशिक्षण और अनुभव से पूरी तरह सक्षम होना चाहिए, अन्यथा हमारी न्यायिक प्रणाली में कुछ गंभीर गड़बड़ होगी। न्यायालय द्वारा इस भूमिका को अदा करने को न्यायोचित ठहराने के लिए, मुझे लगता है कि आज विस्काउंट रेडक्लिफ द्वारा एडवर्ड्स बनाम बेयरस्टो [एडवर्ड्स बनाम बेयरस्टो, 1956 एसी 14 : (1955) 3 डब्ल्यूएलआर 410 (एचएल)] में दिए गए स्पष्टीकरण का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है, जिसमें अतार्किकता को निर्णयकर्ता द्वारा की गयी विधि की किसी अनुमानित किंतु पहचान में न आने वाली त्रुटि के रूप में न्यायालय द्वारा किसी निर्णय को पलटने का आधार माना गया है। अब "तर्कहीनता" एक स्वीकृत आधार के रूप में अपने आप खड़ी हो सकती है, जिससे न्यायिक पुनर्विलोकन द्वारा किसी निर्णय पर हमला किया जा सकता है।"

मैंने तीसरे शीर्षक को "प्रक्रियात्मक अनुचितता" के रूप में वर्णित किया है, न कि प्राकृतिक न्याय के बुनियादी नियमों का पालन करने में विफलता या उस व्यक्ति के प्रति प्रक्रियात्मक निष्पक्षता से कार्य करने में विफलता के रूप में, जो निर्णय से प्रभावित होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस शीर्षक के अंतर्गत न्यायिक पुनर्विलोकन की संवेदनशीलता में एक प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा प्रक्रियात्मक नियमों का पालन करने में विफलता भी शामिल है, जो स्पष्ट रूप से उस विधायी उपकरण में निर्धारित हैं जिसके द्वारा उसे अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया है, यहाँ तक कि जहाँ ऐसी विफलता में प्राकृतिक न्याय का कोई खंडन शामिल नहीं है। लेकिन वर्तमान मामला प्रशासनिक न्यायाधिकरण की कार्यवाही से बिल्कुल भी संबंधित नहीं है।"

15. यह भी समान रूप से सू-स्थापित है कि इसके रिट अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले न्यायालय उम्मीदवारों की तुलनात्मक योग्यता का पुनर्मूल्यांकन करके विशेषज्ञ निकायों द्वारा किए गए चयनों में हस्तक्षेप नहीं करते। चयनों में हस्तक्षेप केवल उन निर्णयों तक सीमित है जो पक्षपात, दुर्भावना और वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन से प्रभावित होते हैं।⁷ इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने यह भी माना है कि प्रशासनिक कार्यवाही की आनुपातिकता के आधार पर समीक्षा की जा सकती है यदि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के तहत प्रत्याभूत मौलिक अधिकारों को प्रभावित करती है।⁸

16. इस मामले में, हमारा प्राथमिक ध्यान प्रक्रियात्मक अनुचितता पर है और विशेष रूप से, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन पर। किसी निर्णय पर पहुँचने की प्रक्रिया उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना कि निर्णय स्वयं। यदि प्रक्रिया 'निष्पक्ष' नहीं है, तो निर्णय का समर्थन संभवतः नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत सामान्य विधि से व्युत्पन्न हैं जो 'कार्रवाई में निष्पक्षता' को प्रत्याभूत करते हैं⁹, के दो पहलू हैं जिनमें पक्षपात के विरुद्ध नियम और निष्पक्ष सुनवाई का नियम शामिल है।

इसके अतिरिक्त, एक युक्तियुक्त आदेश को भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का तीसरा पहलू माना गया है¹⁰ और यह प्रक्रिया की निष्पक्षता सुनिश्चित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

विवाद्यक क

17. प्रथम विवाद्यक जो हमारे द्वारा विचारणीय है, वह यह है कि क्या चयन पक्षपात के विरुद्ध नियम के उल्लंघन के आधार पर दोषपूर्ण है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि जब कोई कानून प्रशासनिक निर्णय लेने की प्रक्रिया निर्दिष्ट करता है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत वैधानिक प्रक्रिया के पूरक होते हैं, लेकिन उसका स्थान नहीं लेते।¹¹ हालाँकि, भले ही कानून प्रशासनिक प्रक्रिया का प्रावधान न करता हो, प्राधिकारी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार निर्णय लेने के लिए बाध्य हैं।

18. अब हम वर्तमान मामले में सुसंगत वैधानिक प्रावधानों पर विचार करते हैं जो सामान्य विधि के सिद्धांतों के साथ-साथ कार्य करते हैं। मध्य प्रदेश पंचायत शिक्षाकर्मों (भर्ती एवं सेवा शर्तें) नियम, 1997 को अधिनियम, 1993 की धारा 53 की उपधारा (2), धारा 70 की उपधारा (1) और धारा 95 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं। नियम 2(ज) में 'शिक्षाकर्मों' की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:

“शिक्षाकर्मों” से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे जिला पंचायत या जनपद पंचायत द्वारा, जैसा भी मामला हो, अपने नियंत्रणाधीन स्कूलों में पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया है।”

19. नियम 5 'चयन एवं भर्ती की पद्धतियों' से संबंधित है। उप-नियम 8 में प्रावधान है कि चयन समिति का गठन अनुसूची II में निर्दिष्ट सदस्यों से मिलकर, जिला पंचायत या जनपद पंचायत द्वारा, जैसा भी मामला हो, किया जाएगा। सुसंगत उप-नियम 9 निम्न प्रकार है:

(i) समिति निम्नलिखित तरीके से साक्षात्कार के लिए बुलाए गए उम्मीदवारों का मूल्यांकन करेगी और अंक प्रदान करेगी:

"क) अनुसूची II में निर्दिष्ट योग्यता परीक्षा में प्राप्त अंकों के लिए 60% अंक;

ख) संबंधित जनपद पंचायत या जिला पंचायत के विद्यालयों में शिक्षण अनुभव के लिए 25% अंक। समकक्ष ग्रामीण विद्यालय के शिक्षण अनुभव के लिए भी इसी प्रकार के लाभ दिए जाएंगे। ग्रामीण विद्यालयों के शिक्षण अनुभव प्रमाण पत्र की वैधता और मूल्यांकन पर समिति का निर्णय अंतिम होगा;

ग) मौखिक परीक्षा के लिए 15% अंक, जिसमें निम्नलिखित परीक्षण शामिल हो सकते हैं:

i) स्थानीय बोली में संचार कौशल

- ii) स्थानीय परिवेश का ज्ञान
- iii) सामान्य ज्ञान
- iv) प्रशिक्षण और शिक्षण योग्यता और
- v) कोई अन्य परीक्षा जिसे चयन समिति उपयुक्त समझे।

घ) अन्य बातें समान रहने पर, वरीयता उन उम्मीदवारों को दी जाएगी जिनके पास बी.एड, बीटीआई या डी.एड प्रमाणपत्र है।

ड) अन्य सभी बातें समान रहने पर, अंतिम चयन में, जनपद पंचायत या जिला पंचायत के विद्यालयों में शिक्षण का अनुभव रखने वालों को वरीयता दी जाएगी।

(ii) प्रत्येक श्रेणी की चयन सूची उपरोक्त मूल्यांकन के आधार पर योग्यता क्रम में तैयार की जाएगी और प्रतीक्षा सूची में 10% नाम शामिल किए जाएंगे जो छह महीने के लिए वैध होंगे।

20. वैधानिक नियम स्पष्ट रूप से उन लोगों के पदनाम निर्दिष्ट करते हैं जिन्हें चयन समिति में शामिल किया जाना चाहिए, जैसा कि नियम, 1997 की अनुसूची II में उल्लिखित है। वे निम्नलिखित हैं:

- “1. अध्यक्ष, स्थायी जनपद पंचायत की शिक्षा समिति;
2. मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जनपद पंचायत;
3. खंड शिक्षा अधिकारी (सदस्य सचिव);
4. शिक्षा के लिए स्थायी समिति द्वारा नामित किए जाने वाले विषय के दो विशेषज्ञ, जिनमें से एक महिला होगी; और
5. स्थायी समिति के सभी सदस्य, जिनमें से कम से कम एक अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित हो, यदि स्थायी समिति में कोई अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग सदस्य नहीं है, तो उसे सामान्य निकाय से नामित किया जाएगा।”

21. इसलिए, 'स्थायी समिति के सभी सदस्यों' को चयन समिति का हिस्सा होना आवश्यक था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्थायी समिति द्वारा निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया था:

“(ग) कलेक्टर, छतरपुर का पत्र क्रमांक 423/एस.टी.98 दिनांक 26.07.1998 मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा पढ़ा गया, जिसमें उल्लेख किया गया है कि शिक्षकों की भर्ती के समय वे सदस्य और अधिकारी भी साक्षात्कार में भाग लेते हैं जिनके निकट संबंधी अभ्यर्थी होते हैं जिसके कारण पूरी चयन प्रक्रिया प्रभावित होने की संभावना है। अतः निर्देश दिए जाते हैं कि तत्काल जाँच की जाए कि क्या कोई अभ्यर्थी साक्षात्कार में समिति के सदस्य का निकट संबंधी है। यदि सदस्य या अधिकारी का

कोई निकट संबंधी अभ्यर्थी है तो ऐसे सदस्य या अधिकारी को साक्षात्कार की तिथि पर उपस्थित नहीं होना चाहिए और उसके स्थान पर किसी निष्पक्ष व्यक्ति को रखा जाना चाहिए। समिति ने सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि यदि किसी सदस्य, अधिकारी या विषय विशेषज्ञ का कोई निकट संबंधी साक्षात्कार में उपस्थित होता है तो उस सदस्य, अधिकारी या विषय विशेषज्ञ द्वारा दिए जाने वाले अंक मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा दिये जाने चाहिए और वह सदस्य, अधिकारी या विषय विशेषज्ञ साक्षात्कार स्थल पर उपस्थित नहीं होगा। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया है।"

22. नियम 40 पंचायत के पदाधिकारियों को हटाने से संबंधित है और इसमें निम्नलिखित प्रावधान हैं:

"40. पंचायत के पदाधिकारियों का हटाया जाना- (1) राज्य सरकार या विहित प्राधिकारी, किसी भी समय, ऐसी जाँच के पश्चात, जो वह उचित समझे, किसी भी पदाधिकारी को हटा सकता है-

- (क) यदि वह अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कदाचार का दोषी पाया गया है; या
- (ख) यदि उसका पद पर बने रहना लोक हित में अवांछनीय है: परन्तु किसी भी व्यक्ति को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक उसे यह कारण बताने का अवसर न दे दिया जाए कि उसे अपने पद से क्यों न हटाया जाए।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, "कदाचार" के अंतर्गत :-

(क) कोई भी कार्य जो प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है,-

- (i) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता; या
- (ii) राज्य के सभी लोगों के बीच सद्भाव और समान भाईचारे की भावना जो धार्मिक, भाषाई, क्षेत्रीय, जातिगत या वर्गीय विविधताओं से परे हो; या
- (iii) महिलाओं की गरिमा; या

(ख) इस अधिनियम के अधीन कर्तव्यों के निर्वहन में घोर उपेक्षा;

[(ग) पंचायत में किसी रिश्तेदार के लिए रोजगार सुनिश्चित करने हेतु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पद या प्रभाव का उपयोग या किसी रिश्तेदार को कोई आर्थिक लाभ प्रदान करने के लिए कोई कार्यवाही, जैसे किसी प्रकार का पट्टा देना, पंचायत के किसी पदाधिकारी द्वारा पंचायत में उनके माध्यम से कोई कार्य करवाना।

स्पष्टीकरण - इस खंड के प्रयोजन के लिए, "रिश्तेदार" शब्द का अर्थ पिता, माता, भाई, बहन, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, सास, ससुर, देवर, ननद, दामाद या पुत्रवधू होगा:]"

23. खंड (ग) के स्पष्टीकरण में 'रिश्तेदार' शब्द की परिभाषा 'पिता, माता, भाई, बहन, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, सास, ससुर, देवर, ननद, दामाद या पुत्रवधू' के रूप में दी गई है। अधिनियम का नियम 100, जो कुछ हद तक प्रासंगिक है, इस प्रकार है:

“100. किसी सदस्य, पदाधिकारी या सेवक द्वारा संविदा में हित अर्जित करने पर शास्ति। - यदि पंचायत का कोई सदस्य, पदाधिकारी या सेवक जानबूझकर, किसी पंचायत के साथ, उसकी ओर से या उसकी ओर से, विहित प्राधिकारी की अनुमति या आज्ञा के बिना, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई व्यक्तिगत अंश या हित अर्जित करता है, तो उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का अधिनियम संख्या XLV) की धारा 168 के अंतर्गत अपराध किया हुआ माना जाएगा।”

24. सुसंगत विधिक प्रावधानों का उल्लेख करने के पश्चात, अब पक्षपात के लिए उपयुक्त परीक्षण तथा लागू होने वाले सबुत के मानक से संबंधित न्याय-शास्त्र का संक्षिप्त अवलोकन करना आवश्यक होगा, इससे पूर्व कि विधिक कानून और सामान्य विधि के सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू किया जाए।

25. कोई व्यक्ति अपने ही मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता के सिद्धांत की उत्पत्ति अंग्रेजी कानून में हुई है। डाइम्स बनाम गैंड जंक्शन केनाल के मालिक¹² में, हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने आर्थिक हित से संबंधित एक मामले में यह टिप्पणी की कि पक्षपात के विरुद्ध नियम न केवल वास्तविक पक्षपात तक, बल्कि पक्षपात के आभास तक भी लागू होता है। इस सिद्धांत को बाद में आर बनाम ससेक्स जस्टिस एक्स पार्ट मैकार्थी¹³ में हित के अन्य रूपों तक भी विस्तारित किया गया, जहाँ यह माना गया कि 'न्याय के क्रम में अनुचित हस्तक्षेप होने का संदेह भी' कार्यवाही को दूषित कर सकता है। लॉर्ड हेवार्ट ने कहा कि यह मूलभूत रूप से महत्वपूर्ण है कि न्याय न केवल किया जाए, बल्कि स्पष्ट रूप से और निस्संदेह न्याय होता हुआ दिखाई भी दे। मेट्रोपॉलिटन प्रॉपर्टीज कंपनी (एफ जी सी) बनाम लैनन¹⁴ मामले में लॉर्ड डेनिंग ने कहा कि, 'यदि सही सोच वाले व्यक्ति यह सोचेंगे कि इन परिस्थितियों में, उनकी ओर से 'पक्षपात की वास्तविक संभावना' है, तो उन्हें नहीं बैठना चाहिए। और यदि वह बैठते भी हैं, तो उनका निर्णय मान्य नहीं होता।' आगे यह माना गया कि 'ऐसी परिस्थितियाँ होनी चाहिए जिनसे एक विवेकशील व्यक्ति यह सोचे कि न्यायाधीश, या अध्यक्ष, जैसा भी मामला हो, एक पक्ष का पक्ष लेगा या लिया, दूसरे के नुकसान पर।'।

26. लॉर्ड डेनिंग द्वारा उल्लिखित 'संभव या संभाव्यता' पर जोर, आर बनाम गॉफ़¹⁵ (संक्षेप में "गॉफ़") में माना गया था, जहाँ न्यायालय ने पक्षपात की संभाव्यता के बजाय उसकी संभावना पर ध्यान केंद्रित किया। गॉफ़ (सुप्रा) में व्यक्त किया गया परीक्षण यह था कि क्या पक्षपात की 'वास्तविक संभावना' के बजाय 'पक्षपात का वास्तविक खतरा' था। इसने निष्पक्ष और सूचित पर्यवेक्षक की धारणा की तुलना में न्यायालय द्वारा पक्षपात के आकलन को

प्राथमिकता दी, यह रेखांकित करते हुए कि न्यायालय 'विवेकशील व्यक्ति का प्रतिरूप है'। इस परीक्षण की अन्य सामान्य विधि न्याय-शास्त्रों में पक्षपात की सार्वजनिक धारणा से दूर हटने के लिए आलोचना की गई। हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने पोर्टर बनाम मैगिल¹⁶ में उक्त परीक्षण को संशोधित किया और निम्नलिखित निर्णय दिया:

“न्यायालय को सबसे पहले उन सभी परिस्थितियों का पता लगाना चाहिए जो इस सुझाव पर असर डालती हैं कि न्यायाधीश पक्षपाती थे, फिर उसे यह पूछना चाहिए कि क्या ये परिस्थितियाँ किसी निष्पक्ष और जानकार पर्यवेक्षक को यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करेंगी कि न्यायाधिकरण के पक्षपाती होने की वास्तविक संभावना थी।”

27. भारतीय न्यायालयों ने पक्षपात का निर्धारण करने के लिए लगातार 'वास्तविक संभावना' परीक्षण अपनाया है¹⁷. केंद्रीय रेलवे विद्युतीकरण संगठन बनाम ईसीआई एसपीआईसी एसएमओ एमसीएमएल (संयुक्त उद्यम) एक संयुक्त उद्यम कंपनी¹⁸ के हालिया निर्णय में, इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने मुख्य न्यायाधीश डीवाई चंद्रचूड (जिनमें एक सदस्य हम में से था) के माध्यम से बोलते हुए, भारतीय स्थिति का सारांश इस प्रकार दिया:

"यद्यपि इंग्लैंड में इस परीक्षण को लेकर अस्थिरता रही है, भारतीय न्यायालय पक्षपात की वास्तविक संभावना या पक्षपात की युक्तियुक्त आशंका के परीक्षण को लागू करके अपने दृष्टिकोण में काफी हद तक एकरूप रहे हैं। हाल ही में, न्यायालय ने पक्षपात के वास्तविक खतरे परीक्षण का उपयोग किया है। हालाँकि, उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि पक्षपात के वास्तविक खतरा परीक्षण और पक्षपात की वास्तविक संभावना परीक्षण के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है यदि पक्षपात के प्रश्न पर किसी विवेकशील या निष्पक्ष व्यक्ति के दृष्टिकोण से विचार किया जाए।"

28. अब वर्तमान मामले के तथ्यों में हम पहले इस बात का परीक्षण करते हैं कि क्या चयन को अपास्त किया जा सकता है यदि ऐसी परिस्थितियाँ हों जो एक निष्पक्ष व्यक्ति के दृष्टिकोण से पक्षपात की उचित संभावना को जन्म देती हों:

(i) जनपद पंचायत द्वारा सर्वसम्मति से पारित किया गया, अलग होने का प्रस्ताव एक सुसंगत और महत्वपूर्ण कारक होगा जो चयन प्रक्रिया में निष्पक्षता सुनिश्चित करने के प्रयासों को दर्शाता है। प्रस्ताव में यह अनिवार्य किया गया है कि जिन सदस्यों के उम्मीदवारों में करीबी रिश्तेदार हैं, वे साक्षात्कार प्रक्रिया से खुद को अलग कर लेंगे और उनकी जिम्मेदारियाँ मुख्य कार्यकारी अधिकारी को सौंप दी जाएँगी। इस प्रकार, पंचायत ने एक निष्पक्ष पर्यवेक्षक के मन में पक्षपात की चिंता और धारणा को संबोधित किया। स्वयं को अलग अलग कर लेना एक स्वीकार्य तंत्र है और यह पक्षपात की किसी भी युक्तियुक्त संभावना को समाप्त करता है। हालाँकि, यह तर्क दिया गया कि मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जनपद पंचायत द्वारा उत्तर में दायर शपथ पत्र, जिसमें पंचायत के सरपंच का प्रमाण पत्र संलग्न है, चयनित/नियुक्त उम्मीदवारों के

चयन समिति के सदस्यों के साथ संबंधों को स्वीकार करता है जिससे पक्षपात का एक उचित निष्कर्ष निकलता है। हालाँकि, जब संबंधित व्यक्ति ने खुद को अलग कर लिया है और कोई अंक नहीं दिया है, तो हमारे लिए इस दावे को स्वीकार करना मुश्किल है कि चयन को किसी तथाकथित रिश्तेदार द्वारा प्रभावित किया गया।

(ii) अधिनियम, 1993 के अनुसार 'रिश्तेदार' की वैधानिक परिभाषा का न्यायिक मंचों द्वारा विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया। यह एक महत्वपूर्ण चूक थी क्योंकि कुछ उम्मीदवार 'रिश्तेदार' की इस परिभाषा के दायरे में नहीं आते। इस प्रकार, पक्षपात की चुनौती और भी कमजोर हो जाती है।

(iii) यह भी तर्क दिया गया है कि शिकायतकर्ता द्वारा साक्षात्कार में प्राप्त अंक अपीलार्थीगण द्वारा प्राप्त अंकों से अधिक थे। ये तथ्य अपीलार्थीगण (चयनित) द्वारा कलेक्टर के समक्ष प्रस्तुत किए जा सकते थे, यदि उन्हें प्रभावित पक्ष के रूप में पक्षकार बनाया जाता और उन्हें सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाता।

29. ऐसी स्थिति में जहाँ सदस्यों ने साक्षात्कार में भाग नहीं लिया, हमारी राय में पक्षपात की उचित संभावना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हालाँकि यह सच है कि वास्तविक पक्षपात साबित करने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन यह बिना किसी ठोस आधार के पक्षपात के आरोप का मामला प्रतीत होता है। हमें इस तथ्य का भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रारंभिक चरण में सुनवाई का अवसर न मिलने के कारण, चयनित व्यक्ति यह साबित नहीं कर पाया कि किसी रिश्तेदार ने उनके चयन को प्रभावित नहीं किया था। यह इस न्यायालय को पक्षपात का निर्णायक रूप से निर्धारण करने के लिए इस मुद्दे की समग्र रूप से जाँच करने में अक्षम बनता है।

30. इस बात पर भी ज़ोर दिया जाना चाहिए कि अपने मामले में न्यायधीश न बनने का नियम, आवश्यकता के नियम के अधीन है और इसके सामने झुकता है¹⁹। जे महापात्रा बनाम उड़ीसा राज्य²⁰ में, न्यायालय ने माना कि आवश्यकता का सिद्धांत पक्षपात के विरुद्ध नियम का अपवाद है। इस तरह के मामले में, आवश्यकता का सिद्धांत भी पूरी तरह से लागू होगा क्योंकि कानून स्पष्ट रूप से चयन समिति की संरचना को अनिवार्य करता है, जैसा कि नियमों की अनुसूची II में उल्लिखित है। आवश्यकता का सिद्धांत यह मानता है कि निर्णय लेने वाले निकायों को उन परिस्थितियों में भी कार्य करने की आवश्यकता होती है जहाँ संभावित हितों का टकराव उत्पन्न हो सकता है। यहाँ, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, संबंधित सदस्यों ने खुद को अलग कर लिया और कोई अंक नहीं दिए। हालाँकि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आवश्यकता का सिद्धांत एक अपवाद है और इसे किसी दिए गए मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए लागू किया जाना चाहिए। आवश्यकता के सिद्धांत को लागू करने के लिए क्षेत्राधिकार के आकार को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस संबंध में, फोर्सिथ और वेड²¹ ने उल्लेख किया है कि छोटे क्षेत्राधिकारों में, योग्य व्यक्तियों की संख्या कम

हो सकती है और यह संभावना हो सकती है कि पक्षकार उन्हें जानते हो, जिससे 'निष्पक्ष और सूचित पर्यवेक्षक' परीक्षण अव्यावहारिक हो जाता है। आवश्यकता का सिद्धांत वह है जहाँ आकार के ऐसे विचारों पर विचार किया जाना चाहिए न कि परीक्षण को विकृत किया जाना चाहिए।

31. निष्पक्षता की धारणा एक अमूर्त विश्लेषण भी नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसे आवश्यकता के सिद्धांत के अनुप्रयोग के लिए संदर्भ की पृष्ठभूमि पर भी समान रूप से विचार करना चाहिए। यह एक ग्रामीण स्तर पर चयन है जहाँ इसकी सम्भवना ज्यादा है कि शामिल व्यक्ति एक-दूसरे को जानते हों। चरणजीत सिंह बनाम हरिंदर शर्मा²² में, एक जनहित वाद दायर किया गया था जिसमें पंजाब के एक छोटे से शहर मानसा में नगर परिषद के लिए क्लर्क, फायरमैन, वाहन चालक, चपरासी और प्रशिक्षकों के चयन को चुनौती दी गई थी जिसमें एक चयन समिति द्वारा चयन किया गया था, जिसमें कुछ चयनित लोगों के रिश्तेदार भी शामिल थे। उच्च न्यायालय ने इस निर्णय को अभिखंडित कर दिया था लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मानसा जैसे छोटे शहर में, पूरी तरह से अजनबियों की चयन समिति का गठन करना मुश्किल होगा। किसी न किसी उम्मीदवार के रिश्तेदार को समिति में जगह मिलना ही है। इसलिए, न्यायालय को यह देखना होगा कि चयन समिति के सदस्य के किसी रिश्तेदार के नाम पर विचार करते समय क्या विहित संतुलन तंत्र का पालन किया गया था। नियमों के अनुसार, जब ऐसा कोई उम्मीदवार उपस्थित होता है, तो संबंधित चयन समिति के सदस्य को कार्यवाही से अलग हो जाना चाहिए और ऐसे उम्मीदवार की नियुक्ति केवल क्षेत्रीय उप निदेशक, स्थानीय सरकार की स्वीकृति प्राप्त करने के बाद ही की जा सकती है।

चयन में पक्षपात या चयन किसी रिश्तेदार द्वारा प्रभावित होने से रोकने के लिए इसे एक एक स्वीकार्य तरीका माना गया।

32. क्राइपक (सुप्रा) मामले में दिए गए महत्वपूर्ण निर्णय पर भरोसा किया गया है, जिसने प्रशासनिक निर्णयों की न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे को काफी विस्तारित किया है। इस निर्णय का हवाला एविड रसूल भट बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य²³ में दिया गया था, जहाँ न्यायालय ने क्राइपक (सुप्रा) को इस प्रकार विभेदित किया:

“विद्वान अधिवक्ता ने प्राकृतिक न्याय के प्रश्न पर ए.के. कृपक एवं अन्य बनाम भारत संघ के मामले पर बहुत भरोसा किया था। हमें नहीं लगता कि वह मामला याचिकाकर्ताओं के लिए किसी भी तरह से सहायक है। यह एक ऐसा मामला था जहाँ चयन बोर्ड के सदस्य के रूप में बैठे व्यक्तियों में से एक, स्वयं चयन के लिए विचार किए जाने वाले व्यक्तियों में से एक था। उसने चयन बोर्ड के विचार-विमर्श में भाग लिया जब उसके प्रतिद्वंद्वियों के दावों पर विचार किया गया। उसने वरीयता क्रम और वरिष्ठता से संबंधित निर्णयों में भाग लिया। उसने चयन बोर्ड के विचार-विमर्श में हर चरण में भाग लिया और हर चरण में उसके हित और कर्तव्य के बीच टकराव था। न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई कि पक्षपात की एक युक्तियुक्त संभावना थी और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ था। हमारे सामने आए मामले में, श्रीनगर के मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल ने लिखित परीक्षा से खुद को अलग कर लिया और अपनी बेटी के साक्षात्कार के दौरान कार्यवाही में भाग

नहीं लिया। जब अन्य उम्मीदवारों का साक्षात्कार हुआ, तो उन्हें अपनी बेटी या किसी भी उम्मीदवार द्वारा प्राप्त अंकों की जानकारी नहीं थी। उसस्के सदाशय पर दूर-दूर तक संदेह करने का कोई कारण नहीं था। पक्षपात का कोई संदेह भी नहीं था, पक्षपात की उचित संभावना तो दूर की बात है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ।"

33. इस न्यायालय की पाँच-न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य²⁴ मामले में जावेद रसूल (सुप्रा) मामले में दिए गए निर्णय का समर्थन किया और कहा कि जब लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य का निकट संबंधी चयन समिति का सदस्य हो, तो संबंधित सदस्य का अपने संबंधी का साक्षात्कार न लेना ही पर्याप्त होगा। जब उसका संबंधी साक्षात्कार के लिए उपस्थित हो, तो उसे समिति से हट जाना चाहिए और उसे अभ्यर्थी की योग्यता के संबंध में चर्चा में भाग नहीं लेना चाहिए और यहाँ तक कि संबंधित सदस्य को अंक भी नहीं बताने चाहिए।

34. इसी प्रकार, जसवंत सिंह नरवाल बनाम पंजाब राज्य²⁵ मामले में, चयनित अभ्यर्थियों में से एक के पिता साक्षात्कार आयोजित करने वाली चयन समिति में थे। हालाँकि, जब उनका पुत्र मौखिक परीक्षा के लिए उपस्थित हुआ, तो उन्होंने विचार-विमर्श में भाग नहीं लिया। इसमें यह माना गया कि इस प्रकार चयन प्रक्रिया दोषपूर्ण नहीं थी।

35. उपरोक्त अनुपातों के आधार पर, तथ्यों के आधार पर, यह स्पष्ट रूप से पक्षपात के संदेह मात्र का मामला प्रतीत होता है, विशेष रूप से इस तथ्य के कारण कि जनपद पंचायत ने सर्वसम्मति से संबंधित सदस्य को अलग करने का प्रस्ताव पारित किया। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि पक्षपात के विरुद्ध नियम को ही स्वयं को अलग करने का आधार माना जाता है। चयनित व्यक्तियों को पक्षकार नहीं बनाया गया था और वे कलेक्टर के समक्ष चयन का विरोध नहीं कर सकते थे, प्रक्रिया की पूरी जानकारी के अभाव में, यह निष्कर्ष निकालना और भी कठिन है कि पक्षपात की कोई उचित संभावना थी। उपरोक्त कारणों के परिप्रेक्ष्य में, इस मामले में हमारा निष्कर्ष यह है कि निमो जूडेक्स नियम के उल्लंघन के कारण चयन दोषपूर्ण नहीं है।

विवाद्यक ख

36. यह हमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के दूसरे अंग, अर्थात् 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' पर लाता है और इस बात पर लाता है कि क्या सुनवाई के अधिकार के उल्लंघन का दावा करने के लिए पक्षपात का प्रदर्शन अनिवार्य है। 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' का सिद्धांत प्रक्रियात्मक निष्पक्षता के मूल में निहित है, यह सुनिश्चित करता है कि किसी को भी अपना पक्ष रखने का अवसर दिए बिना दोषी न ठहराया जाए या प्रतिकूल रूप से प्रभावित न किया जाए। रिज बनाम बाल्डविन²⁶ के निर्णय को ब्रिटिश प्रशासनिक कानून में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक निर्णय माना जाता है और इसे अक्सर प्राकृतिक न्याय के 'मैग्ना कार्टा' के रूप में संदर्भित किया जाता है। यह निर्णय भारतीय कानूनी संदर्भ में गहराई से

प्रतिध्वनित हुआ है, जहाँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत संवैधानिक गारंटियों के साथ दृढ़ता से जुड़े हुए हैं।

37. मोहिंदर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त²⁷ (संक्षेप में 'मोहिंदर गिल') में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि:

“आज हमारे न्यायशास्त्र में प्राकृतिक न्याय द्वारा की गई प्रगति पुराने सीमांतों से कहीं आगे निकल चुकी है और यदि न्यायिक सृजनशीलता सीमांत (धुंधले) क्षेत्रों को उजागर करती है, तो वह केवल शासन की गुणवत्ता में सुधार ही करती है, क्योंकि इससे उसके कार्य-तंत्र में निष्पक्षता का संचार होता है। कानून अमूर्तताओं की दुनिया में नहीं, बल्कि ठोस वास्तविकताओं के संसार में जीवित रहता है और किसी अच्छे सिद्धांत का त्याग केवल अत्यंत असाधारण परिस्थितियों तक ही सीमित होना चाहिए। यदि बिना सुने दंडित करना गलत है, तो वह गलत ही रहेगा, सिवाय उन परिस्थितियों के जहाँ सामाजिक आवश्यकता उस पर भारी पड़ती हो।”

38. स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम भारत संघ²⁸ में, इस न्यायालय ने कहा:

“निष्पक्षता का यह नियम अत्यंत असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर त्यागा नहीं जाना चाहिए, जहाँ बाध्यकारी आवश्यकता ऐसा करने की माँग करे। न्यायालय को परिस्थितिजन्य संशोधनों के साथ, इस मौलिक नियम को अधिकतम सीमा तक सुरक्षित रखने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए।”

39. न्यायमूर्ति भगवती ने मेनका गांधी बनाम भारत संघ²⁹ मामले में, प्राकृतिक न्याय को एक गहन 'मानवीय सिद्धांत' के रूप में वर्णित किया जिसे कानून में निष्पक्षता लाने और न्याय सुनिश्चित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। इस सिद्धांत को लोकतांत्रिक समाजों में व्यापक मान्यता मिली है और यह एक सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत नियम के रूप में विकसित हुआ है, जिसने प्रशासनिक निर्णय लेने के क्षेत्रों को प्रभावित किया है।

40. वेड और फोर्साइथ³⁰ ने अच्छे एवं विचारशील प्रशासन के सार पर निम्नलिखित चर्चा की है:

“न्यायाधीश स्वाभाविक रूप से अपने विवेक का प्रयोग करने की ओर प्रवृत्त होते हैं, विशेषकर तब जब प्राकृतिक न्याय का अभिवचन किसी कमजोर मामले वाले दावेदार के लिए अंतिम सहारा बन जाती है। किंतु इससे इस मूल सिद्धांत को कमजोर नहीं होने दिया जाना चाहिए कि निष्पक्ष प्रक्रिया सर्वोपरि है, और दोनों पक्षों को सुनने के बाद ही गुण-दोषों पर समुचित विचार किया जा सकता है। किसी ऐसे अधिकरण के मामले में जिसे विधि के अनुसार निर्णय करना होता है, यह न्यायोचित हो सकता है कि यदि दावे के दोष ऐसे हों कि वह किसी भी स्थिति में निराशाजनक हो, तो प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन की उपेक्षा की जा सकती है। किंतु विवेकाधीन प्रशासनिक निर्णयों के मामलों, जैसे किसी शिक्षक की

बर्खास्तगी या किसी छात्र का निष्कासन, में पक्षकार को सुनना प्रायः प्राधिकारी के मन को कोमल बना देता है और उसके निर्णय को परिवर्तित कर सकता है, भले ही प्रारंभ से ही यह स्पष्ट हो कि दंडात्मक कार्रवाई उचित होगी। यही एक अच्छे और विचारशील प्रशासन का सार है, और विधि को इसे संरक्षित रखने के प्रति सतर्क रहना चाहिए।”

41. सुनवाई का अवसर किसी भी सभ्य विधिक व्यवस्था के लिए इतना मौलिक माना जाता है कि न्यायालयों ने प्रक्रिया संबंधी आधारों पर किसी अधिनियम को असंवैधानिक घोषित होने से बचाने के लिए उसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को अंतर्निहित रूप से पढ़ा है³¹।

42. यह तर्क हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है कि यदि सुनवाई का अवसर प्रदान न किए जाने से कोई प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न नहीं होता है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना आवश्यक नहीं हो सकता। इस संदर्भ में, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशीय पीठ ने एस. एल. कपूर बनाम जगमोहन³² में, न्यायमूर्ति चिनप्पा रेड्डी के माध्यम से बोलते हुए, ऐसे तर्कों को “हानिकारक” माना और यह प्रतिपादित किया कि “प्राकृतिक न्याय का पालन न किया जाना अपने-आप में ही किसी भी व्यक्ति को प्रतिकूल प्रभाव पहुंचाने जैसा है, और प्राकृतिक न्याय से वंचित किए जाने के स्वतंत्र प्रमाण के अतिरिक्त प्रतिकूल प्रभाव का पृथक प्रमाण आवश्यक नहीं है।” हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक अपवाद भी निर्धारित किया है, जहाँ ‘स्वीकृत या निर्विवाद तथ्यों के आधार पर केवल एक ही निष्कर्ष संभव है, और कानून के तहत केवल एक ही दंड की अनुमति है, तो न्यायालय प्राकृतिक न्याय के पालन के लिए बाध्य नहीं कर सकता है’³³।

43. प्रोफेसर आईपी मैसी³⁴ ने इस बदलाव पर निम्नलिखित टिप्पणी की है:

“एसएल कपूर बनाम जगमोहन मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पहले, नियम यह था कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत केवल तभी लागू होंगे जब किसी प्रशासनिक कार्यवाही से व्यक्ति को कोई पक्षपात हुआ हो, जिसका अर्थ है कि उसे कुछ ‘नागरिक परिणाम’ भुगतने पड़े होंगे। इसलिए, व्यक्ति को ‘पक्षपात’ या नागरिक परिणाम साबित करने के लिए कुछ अतिरिक्त दिखाना पड़ता था। इस दृष्टिकोण ने अत्यधिक व्यावहारिक महत्व के क्षेत्र में प्रशासनिक कानून के विकास को अवरुद्ध कर दिया था। यह संतोषजनक है कि जगमोहन मामले में, न्यायालय ने यह निर्णय देते हुए एक साहसिक कदम उठाया कि पक्षपात को अलग से प्रदर्शित करना आवश्यक नहीं है। प्राकृतिक न्याय का पालन न करना अपने आप में पक्षपात है। हालाँकि, केवल इसलिए कि तथ्य स्वीकार कर लिए गए हैं या निर्विवाद हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है।”

44. बैंक ऑफ पटियाला बनाम एसके शर्मा³⁵ में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि कि जहाँ किसी वैधानिक प्रावधान द्वारा जाँच नहीं की जाती है और प्रशासनिक प्राधिकरण का एकमात्र दायित्व प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना है, वहाँ न्यायालय/अधिकरण को निष्पक्ष सुनवाई के नियम के पूर्ण उल्लंघन और उस नियम के किसी पहलू के उल्लंघन के बीच अंतर करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, 'अवसर न मिलने' या 'पर्याप्त अवसर न मिलने' के बीच अंतर किया जाना चाहिए। पूर्व के मामले में, पारित आदेश निस्संदेह अमान्य होगा और प्राधिकरण को निष्पक्ष सुनवाई के नियम के अनुसार नए सिरे से कार्यवाही करने के लिए कहा जा सकता है। लेकिन बाद के मामले में, निष्पक्ष सुनवाई के नियम के किसी पहलू के उल्लंघन के प्रभाव की पक्षपात के दृष्टिकोण से जाँच की जानी चाहिए।

45. धर्मपाल सत्यपाल लिमिटेड बनाम उप-आयुक्त, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, गुवाहाटी और अन्य³⁶ में, इस न्यायालय ने पक्षपात के प्रश्न पर निम्नलिखित रूप से विचार किया:

“42. अब तक तो सब ठीक है। हालाँकि, श्री सोराबजी द्वारा उठाया गया एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वह प्राधिकरण, जिसे निर्णय लेना है, इस आधार पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता को छोड़ सकता है कि ऐसा अवसर देने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा? दूसरे शब्दों में, क्या प्रशासनिक प्राधिकरण यह निर्णय लेकर स्वयं नोटिस जारी करने की आवश्यकता को छोड़ सकता है कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही की जानी है, उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा? उत्तर नकारात्मक में होना चाहिए। प्राधिकरण को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन को इस आधार पर अनदेखा करने की अनुमति नहीं है कि यदि सुनवाई का अवसर भी दिया गया होता, तो भी कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होता। सुनवाई का अवसर उद्देश्य पूरा करेगा या नहीं, इस पर बाद में विचार किया जाना चाहिए और ऐसी बातें प्राधिकरण द्वारा पूर्वधारणा नहीं की जा सकतीं। अंग्रेजी न्यायालय ने वर्ष 1943 में जनरल मेडिकल काउंसिल बनाम स्पैकमैन [1943 एसी 627] के मामले में ऐसा ही माना था। इस न्यायालय ने बोर्ड ऑफ हाई स्कूल एंड इंटरमीडिएट एजुकेशन बनाम चित्रा श्रीवास्तव [(1970) 1 एससीसी 121] में भी यही बात कही थी...”

46. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुधीर कुमार सिंह³⁷ के एक हालिया निर्णय में, कानून की स्थिति को इस प्रकार संक्षेपित किया गया था:

“(1) प्राकृतिक न्याय न्यायपालिका के हाथों में एक लचीला उपकरण है जिससे वह उचित मामलों में अन्याय का निवारण कर सकती है। दूसरे पक्ष को सुनो 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' नियम का उल्लंघन अपने आप में, बिना किसी और कारण के, इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता कि इससे पक्षपात हुआ है।

(2) जहाँ कानून के प्रक्रियात्मक और/या मूल प्रावधान प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को समाहित करते हैं, वहाँ उनका उल्लंघन अपने आप में पारित आदेशों को अमान्य नहीं बनाता। यहाँ भी, वादी को पक्षपात अवश्य होना चाहिए, सिवाय कानून के किसी अनिवार्य प्रावधान के मामले में, जिसकी कल्पना न केवल व्यक्तिगत हित में, बल्कि सार्वजनिक हित में भी की जाती है।

(3) प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन की शिकायत करने वाले व्यक्ति को कोई पक्षपात नहीं होता है, जब ऐसा व्यक्ति अपने या उसके विरुद्ध मामले पर विवाद नहीं करता है। यह एस्टॉपेल, स्वीकृति, छूट के कारण हो सकता है। और तथ्यों को चुनौती न देने, न नकारने या न स्वीकारने के माध्यम से, ऐसे मामलों में जिनमें न्यायालय तथ्यों के आधार पर पाता है कि प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन की शिकायत करने वाले व्यक्ति पर कोई वास्तविक प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला गया है।

(4) ऐसे मामलों में जहाँ तथ्यों को स्वीकार किया जा सकता है या निर्विवाद कहा जा सकता है, और केवल एक ही निष्कर्ष संभव है, न्यायालय तब निरर्थक आदेश पारित नहीं करता जब वास्तव में कोई पक्षपात उत्पन्न नहीं हुआ हो। यह निष्कर्ष न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों के मूल्यांकन के आधार पर निकाला जाना चाहिए, न कि उस प्राधिकारी द्वारा जो किसी व्यक्ति को प्राकृतिक न्याय से वंचित करता है।

(5) "पक्षपात" अपवाद केवल एक आशंका या वादी के उचित संदेह से अधिक होना चाहिए। यह तथ्य के रूप में मौजूद होना चाहिए, या प्राकृतिक न्याय के पालन न करने से उत्पन्न होने वाले पक्षपात की संभावना के एक निश्चित अनुमान पर आधारित होना चाहिए।"

47. 'पक्षपात अपवाद' पर उपर्युक्त सिद्धांतों को, हालांकि, 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' के मूल सिद्धांत का उल्लंघन नहीं समझा जाना चाहिए। इस संबंध में, प्रशासनिक कानून के संवैधानिकीकरण और मेनका गांधी (सुप्रा) में किए गए सैद्धांतिक बदलावों को मध्यमाम ब्रॉडकास्टिंग लिमिटेड बनाम भारत संघ³⁸ के हालिया निर्णय में संक्षेप में इस प्रकार देखा गया है:

"55.1. सबसे पहले, प्रक्रियात्मक निष्पक्षता को अब केवल एक न्यायसंगत परिणाम प्राप्त करने के साधन के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी आवश्यकता के रूप में देखा जाता है जो अपने आप में एक अंतर्निहित मूल्य रखती है। इस परिवर्तन के मद्देनजर, न्यायालयों को अब केवल इस आधार पर प्रक्रियात्मक उल्लंघनों का आकलन करने से रोक दिया गया है कि क्या प्रक्रिया ने मामले के परिणाम को प्रभावित किया होगा। [एस.एल. कपूर बनाम जगमोहन, (1980) 4 एससीसी 379; "प्राकृतिक न्याय का पालन न करना अपने आप में किसी भी

व्यक्ति के लिए पक्षपात है और पक्षपात का प्रमाण, प्राकृतिक न्याय से इनकार के प्रमाण से स्वतंत्र रूप से, अनावश्यक है; स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 664: एआईआर 1981 एससी 818 भी देखें] इसके बजाय, न्यायालयों को यह तय करना होगा कि क्या अपनाई गई प्रक्रिया उसके परिणाम से स्वतंत्र रूप से निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया के अधिकार का उल्लंघन किया। इस

विचारधारा के अनुरूप, न्यायालयों ने किसी अधिनियम को प्रक्रियात्मक आधार पर असंवैधानिक घोषित होने से बचाने के लिए उसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को शामिल किया है। [ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन, (1985) 3 एससीसी 545; सी.बी. गौतम बनाम भारत संघ, (1993) 1 एससीसी 78; सहारा इंडिया (फर्म) (1) बनाम सीआईटी, (2008) 14 एससीसी 151; केसर एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) 13 एससीसी 733]

55.2. दूसरे, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत प्रक्रिया में तर्कसंगतता का संचार करते हैं। इस तर्क का जवाब देते हुए कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत स्थिर नहीं हैं, बल्कि परिस्थितियों के अनुसार ढाले जा सकते हैं, यह माना गया कि प्राकृतिक न्याय का मूल एक उचित प्रक्रिया की गारंटी देता है जो अनुच्छेद 14, 19 और 21 में निहित एक संवैधानिक आवश्यकता है। 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' के पहलू में नोटिस के घटक, नोटिस की विषय-वस्तु, जाँच रिपोर्ट और अवलोकन के लिए उपलब्ध सामग्री शामिल हैं। हालाँकि परिस्थितिजन्य संशोधन स्वीकार्य हैं, लेकिन प्राकृतिक न्याय के नियमों को परिस्थिति की आवश्यकताओं के अनुरूप इस हद तक संशोधित नहीं किया जा सकता कि सिद्धांत का मूल निरस्त हो जाए क्योंकि यही मूल सिद्धांत प्रक्रियात्मक तर्कसंगतता प्रदान करता है। यह साबित करने का दायित्व आवेदक पर है कि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी द्वारा अपनाई गई (या नहीं अपनाई गई) प्रक्रिया वास्तव में निष्पक्ष और उचित सुनवाई के अधिकार के मूल सिद्धांत का उल्लंघन करती है। [मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 1 एससीसी 248 में न्यायमूर्ति भगवती के निर्णय का पैरा 12 देखें।]"

48. इस मुद्दे पर, इस न्यायालय की पाँच न्यायाधीशों की पीठ ने CORE (सुप्रा) में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन का उद्देश्य इस प्रकार बताया:

“80. ...प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि “प्रत्येक व्यक्ति जिसके अधिकार प्रस्तावित कार्यवाही से प्रभावित होने वाले हैं, उसे निष्पक्ष सुनवाई मिले।” प्राकृतिक न्याय का पालन न करना अपने आप में किसी भी व्यक्ति के प्रति पक्षपात है जिसे प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्याय से वंचित किया गया है। प्रक्रियात्मक निष्पक्षता का सिद्धांत कानून के शासन और सुशासन के सिद्धांतों में निहित है। मध्यम

ब्रॉडकास्टिंग लिमिटेड बनाम भारत संघ (2023) 13 एससीसी 401 में, इस न्यायालय ने माना कि प्रक्रियात्मक निष्पक्षता की आवश्यकता "अपने आप में एक अंतर्निहित मूल्य रखती है।"

49. वर्तमान मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, कलेक्टर ने अपने आदेश में दर्ज किया है कि यद्यपि चयनित 'रिश्तेदारों' को पक्षकार नहीं बनाया गया है, 'यह सिद्ध होता है कि इन रिश्तेदारों की नियुक्ति योजना के अनुसार नहीं मानी जा सकती' और इसलिए सुनवाई का अवसर प्रदान करना आवश्यक नहीं है। आयुक्त ने अपने पुनरीक्षण आदेश में इस बात को दोहराया। खंडपीठ ने अपने आदेश में यह भी कहा कि प्रभावित पक्षों को पक्षकार बनाना अनिवार्य था। जैसा कि न्यायमूर्ति विश्वनाथन ने कहा, प्रतिवादी संख्या 4 (अर्चना मिश्रा) को उन उम्मीदवारों को पक्षकार बनाना चाहिए था जिन्हें चुना गया था और नियुक्त किया गया था और यदि उन्होंने प्रभावित पक्षों को पक्षकार नहीं बनाया होता, तो भी कलेक्टर को चयनितों को पक्षकार बनाने का आदेश देना चाहिए था। यहाँ तथ्य ऐसे नहीं हैं जहाँ केवल एक ही स्थिति उभरती हो। यह विवादित तथ्यों का मामला है। उल्लेखनीय रूप से आदेशों में सुनवाई से इनकार करने के विधिक प्रभाव की जाँच नहीं की गई और यह अनुमान लगाना मुश्किल है कि कलेक्टर और पुनरीक्षण प्राधिकारी का निष्कर्ष क्या होता अगर उन्हें सुनवाई से इनकार करने के प्रस्ताव पर विचार करना होता।

49. वर्तमान मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, कलेक्टर ने अपने आदेश में दर्ज किया है कि यद्यपि चयनित 'रिश्तेदारों' को पक्षकार नहीं बनाया गया है, 'यह सिद्ध होता है कि इन रिश्तेदारों की नियुक्ति योजना के अनुसार नहीं मानी जा सकती' और इसलिए सुनवाई का अवसर प्रदान करना आवश्यक नहीं है। आयुक्त ने अपने पुनरीक्षण आदेश में इस बात को दोहराया। खंडपीठ ने अपने आदेश में यह भी कहा कि प्रभावित पक्षों को पक्षकार बनाना अनिवार्य था। जैसा कि न्यायमूर्ति विश्वनाथन ने कहा, प्रतिवादी संख्या 4 (अर्चना मिश्रा) को उन उम्मीदवारों को पक्षकार बनाना चाहिए था जिन्हें चुना गया था और नियुक्त किया गया था और यदि उन्होंने प्रभावित पक्षों को पक्षकार नहीं बनाया होता, तो भी कलेक्टर को चयनितों को पक्षकार बनाने का आदेश देना चाहिए था। यहाँ तथ्य ऐसे नहीं हैं जहाँ केवल एक ही स्थिति उभरती हो। यह विवादित तथ्यों का मामला है। उल्लेखनीय रूप से आदेशों में सुनवाई से इनकार करने के विधिक प्रभाव की जाँच नहीं की गई और यह अनुमान लगाना मुश्किल है कि कलेक्टर और पुनरीक्षण प्राधिकारी का निष्कर्ष क्या होता अगर उन्हें सुनवाई से इनकार करने के प्रस्ताव पर विचार करना होता।

50. इसके अलावा, यह प्रश्न कि क्या पक्षपात प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के कारण उत्पन्न हुआ था, उठाया नहीं जा सकता, जहाँ ऐसे सिद्धांत वैधानिक प्रक्रिया³⁹ में शामिल हैं। इस संबंध में, नियम 9 महत्वपूर्ण है और इस प्रकार

"9. अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी की शक्ति- अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी, पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के बाद और ऐसी आगे की जाँच, यदि कोई हो,

जो वह आवश्यक समझे, अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अधीन, अपील किए गए आदेश या निर्णय की पुष्टि, परिवर्तन या उसे अपास्त कर सकता है।”

51. उपरोक्त पर विचार करते हुए, न्यायमूर्ति विश्वनाथन ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

“कम से कम उस समय जब कलेक्टर ने सभी 14 नामों की पहचान की थी, ए एंड आर नियमों के नियम 9 का पालन किया जाना चाहिए था और चयनित उम्मीदवारों को अपना पक्ष रखने का अवसर देते हुए नोटिस जारी किए जाने चाहिए थे और उसके बाद कलेक्टर द्वारा आवश्यक समझी जाने वाली जाँच की जानी चाहिए थी। ऐसा भी नहीं किया गया। यह तब और भी अधिक है जब 249 नियुक्तियों/उम्मीदवारों में से केवल 14 उम्मीदवारों की नियुक्ति को इस आधार पर अपास्त कर दिया गया कि वे रिश्तेदार थे और यह पूरे चयन को अपास्त करने का मामला नहीं था। यह सर्वविदित है कि सेवा मामलों में जब कोई असफल उम्मीदवार चयन प्रक्रिया को चुनौती देता है, तो वर्तमान मामले जैसे मामले में जहाँ विशिष्ट शिकायत रिश्तेदारों की श्रेणी के अंतर्गत 14 उम्मीदवारों के खिलाफ थी और जब कुल संख्या केवल धारा 249 के अनुसार, कम से कम जिन उम्मीदवारों के खिलाफ विशिष्ट आरोप लगाए गए थे और जिनकी पहचान की गई थी, उन्हें नोटिस दिया जाना चाहिए था और उन्हें पक्ष बनाया जाना चाहिए था। इस न्यायालय ने, उन मामलों में भी जहाँ चयनित उम्मीदवारों की संख्या बहुत अधिक थी, वर्तमान मामले के विपरीत, यह माना है कि रिट याचिकाओं पर निर्णय देते समय भी, कम से कम कुछ चयनित उम्मीदवारों को पक्षकार बनाया जाना चाहिए, भले ही वह प्रतिनिधि की हैसियत से ही क्यों न हो। यह भी माना गया है कि सेवा न्यायशास्त्र में, यदि कोई असफल उम्मीदवार चयन प्रक्रिया को चुनौती देता है, तो चयनित उम्मीदवारों को पक्षकार बनाया जाना चाहिए। [देखें जे.एस. यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2011) 6 एससीसी 44570 का 33 (अनुच्छेद 31) और प्रबोध वर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1984) 4 एससीसी 251 (अनुच्छेद 28) और रंजन कुमार एवं अन्य बनाम राज्य बिहार एवं अन्य, 2014: आईएनएससी:276 = (2014) 16 एससीसी 187 (पैरा 4,5,8,9 और 13)] यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ आरोप यह था कि गड़बड़ी इतनी व्यापक और सर्वव्यापी थी कि चयन के परिणाम को इस तरह प्रभावित कर रही थी कि भूसे से अनाज को अलग करना मुश्किल हो गया था। यह नहीं कहा जा सकता था और यह राज्य का मामला भी नहीं है कि कथित रूप से दागी उम्मीदवारों को बेदाग उम्मीदवारों से अलग करना संभव नहीं था। [देखें भारत संघ एवं अन्य बनाम जी. चक्रधर, (2002) 5 एससीसी 146 (पैरा 7 और 8), अभिषेक कुमार सिंह बनाम जी. पटनायक एवं अन्य, 2021: आईएनएससी: 305 = (2021) 7 एससीसी 613 (पैरा 72)।”

52. अनेक निर्णयों की श्रृंखला में, इस न्यायालय ने नोटिस की तामील और निष्पक्ष सुनवाई की आवश्यकता के बीच एक स्पष्ट और महत्वपूर्ण भेद स्थापित किया है।⁴⁰ प्रतिवादीगण ने

एस.के. शर्मा (सुप्रा) पर भरोसा किया है, जिसमें उन परिस्थितियों को रेखांकित किया गया है जहाँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन न किया जाना घातक नहीं माना जाता। तथापि, यह ध्यान में रखा जाना आवश्यक है कि एस.के. शर्मा (सुप्रा) पूर्णतः अवसर से वंचित किए जाने का मामला नहीं था, जैसा कि वर्तमान प्रकरण में है। वास्तव में, एस.के. शर्मा (सुप्रा) में न्यायमूर्ति विश्वनाथन द्वारा रिज बनाम बाल्डविन⁴¹ के क्लासिक निर्णय का उल्लेख करने के पश्चात्, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिलेखित किया है कि जहाँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पूर्ण उल्लंघन होता है, वहाँ ऐसा उल्लंघन मूलभूत प्रकृति का होगा। अतः एस.के. शर्मा (उपर्युक्त) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर दिया जाना' के प्रथम अंग के उल्लंघन—अर्थात् नोटिस की तामील न किए जाने—से संबंधित मामला नहीं था। उक्त निर्णय में स्पष्ट रूप से यह अभिलेखित किया गया है कि “प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर दिया जाना', के उल्लंघन और उस सिद्धांत के किसी पहलू के उल्लंघन के बीच भेद किया जाना चाहिए।” दूसरे शब्दों में, “नोटिस का पूर्ण अभाव”, “सुनवाई का अभाव” तथा “पर्याप्त सुनवाई का अभाव”—या भिन्न शब्दों में कहें तो “अवसर का पूर्ण अभाव” और “पर्याप्त अवसर का अभाव”—के बीच अंतर को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। अतः एस.के. शर्मा (उपर्युक्त) में दिया गया निर्णय वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता, क्योंकि यह ऐसा प्रकरण है जिसमें किसी प्रकार का कोई नोटिस ही नहीं दिया गया।

53. वैधानिक प्रावधान में सुनवाई का अवसर भी स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है:

“40. पंचायत के पदाधिकारियों का हटाया जाना- (1) राज्य सरकार या विहित प्राधिकारी ऐसी जाँच के बाद, जो वह उचित समझे, किसी भी समय किसी पदाधिकारी को हटा सकता है -

(क) यदि वह अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कदाचार का दोषी पाया गया हो; या

(ख) यदि उसका पद पर बने रहना जनता के हित में अवांछनीय हो:

परन्तु किसी भी व्यक्ति को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक उसे कारण बताने का अवसर न दे दिया गया हो कि उसे अपने पद से क्यों न हटाया जाए।”

[जोर दिया गया]

54. सूचना के अभाव में, उल्लंघन प्रक्रियात्मक निष्पक्षता के मूल पर प्रहार करता है, जिससे निर्णय अमान्य हो जाता है, जब तक कि असाधारण परिस्थितियाँ इस तरह के विचलन को उचित न ठहराएँ। चयन का उल्लंघन न केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था, बल्कि स्पष्ट वैधानिक प्रावधान के भी विपरीत था, जिसके तहत कारण बताने और आत्मरक्षा का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता थी। पक्षपात सिद्धांत को सामान्य नियम के अपवाद के रूप में समझा जाना चाहिए और इसलिए यह आदर्श नहीं हो सकता। पूर्वगामी के मद्देनजर, वर्तमान मामले में 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' के सिद्धांत का घोर उल्लंघन देखा गया है।

55. अगला विवादक जो हमारे समक्ष विचारणीय है, वह यह है कि क्या प्रारंभिक चरण में प्राकृतिक न्याय से इनकार को अपीलीय निकाय द्वारा ठीक किया जा सकता है। इस मुद्दे पर सबसे पहला निर्णय ऑस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय द्वारा ऑस्ट्रेलियन वर्कर्स यूनियन बनाम बोवेन⁴² में दिया गया था। बोवेन ने संघ की सामान्य परिषद द्वारा अपनी बर्खास्तगी का विरोध किया, पक्षपात का दावा करते हुए कहा कि संघ सचिव ने अभियोजक और न्यायाधीश दोनों की भूमिका निभाई थी। यद्यपि राष्ट्रमंडल सुलह एवं मध्यस्थता न्यायालय ने उनके पक्ष में निर्णय सुनाया, लेकिन अपील पर यह निर्णय पलट दिया गया। अपीलीय न्यायालय ने माना कि सचिव की भूमिका पक्षपात के विरुद्ध नियम का उल्लंघन नहीं करती है और यदि करती भी है, तो मूल कार्यवाही में किसी भी त्रुटि का समाधान वार्षिक सम्मेलन में एक निष्पक्ष अपील द्वारा किया जा सकता है, जिस पर बोवेन ने कोई विवाद नहीं किया।

56. इसके बाद, एक ट्रेड यूनियन विवाद से जुड़े मामले में, लॉर्ड डेनिंग ने अन्नामुनथोडो बनाम ऑयलफील्ड वर्कर्स ट्रेड यूनियन⁴³ में, यह निर्णय सुनाया कि प्रारंभिक सुनवाई के दौरान प्राकृतिक न्याय में किसी त्रुटि का समाधान अपील द्वारा नहीं किया जा सकता।

57. लेरी बनाम नेशनल यूनियन ऑफ व्हीकल बिल्डर्स⁴⁴ (संक्षेप में "लेरी") इस बिंदु पर एक प्रमुख प्राधिकार है कि प्रारंभिक चरण में प्राकृतिक न्याय की विफलता को अपीलीय चरण में ठीक नहीं किया जा सकता। यह मामला वादी के ट्रेड यूनियन की एक शाखा समिति द्वारा निष्कासन से संबंधित था, एक ऐसी बैठक में जिसके बारे में उसे पता नहीं था। उसने शाखा समिति के आदेश के विरुद्ध राहत के लिए अपील परिषद का रुख किया, जिसने पूरी पुनर्विचार-विमर्श किया लेकिन शाखा समिति के निर्णय को बरकरार रखा। इसके बाद वादी ने एक रिट दायर की, जिसमें यह घोषित करने की मांग की गई कि उसका संघ की सदस्यता से निष्कासन और साथ ही क्षेत्र आयोजक के रूप में उसका पद गैरकानूनी, अमान्य और शून्य था। मेगारी जे ने प्रश्न को इस प्रकार प्रस्तुत किया:

“यदि किसी व्यक्ति की कभी भी उपयुक्त परीक्षण संस्था द्वारा निष्पक्ष सुनवाई नहीं हुई है, तो क्या अपीलीय संस्था अपने अपीलीय कार्य को त्यागकर उस व्यक्ति को निष्पक्ष सुनवाई प्रदान कर सकती है, जो उसे कभी नहीं मिली? यदि नियम और कानून मिलकर सदस्य को निष्पक्ष सुनवाई और अपील का अधिकार देते हैं, तो उसे यह क्यों बताया जाना चाहिए कि उसे एक अनुचित सुनवाई और एक निष्पक्ष अपील से संतुष्ट होना चाहिए?... भले ही अपील को नए सिरे से सुनवाई माना जाए, लेकिन सदस्य को उसे निष्कासित करने के प्रभावी निर्णय से किसी अन्य संस्था में अपील करने के अधिकार से वंचित किया जा रहा है।

58. यह माना गया कि ऐसी स्थिति में उचित तरीका यह होगा कि मामले की नए सिरे से सुनवाई की जाए:

“यदि कोई इस तर्क को स्वीकार करता है कि सुनवाई निकाय में प्राकृतिक न्याय का दोष अपीलीय निकाय में प्राकृतिक न्याय की उपस्थिति से ठीक किया जा सकता है, तो इसका परिणाम यह होगा कि सदस्य को निष्कासन निकाय से अपील करने के उसके अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा। यदि नियम और कानून मिलकर सदस्य को निष्पक्ष सुनवाई और अपील का अधिकार देते हैं, तो उसे यह क्यों बताया जाना चाहिए कि उसे एक अन्यायपूर्ण सुनवाई और एक निष्पक्ष अपील से संतुष्ट होना चाहिए? भले ही अपील को नए सिरे से सुनवाई माना जाए, सदस्य को उसे निष्कासित करने के प्रभावी निर्णय से किसी अन्य निकाय में अपील करने के उसके अधिकार से वंचित किया जा रहा है। मैं यह नहीं सोच सकता कि प्राकृतिक न्याय ऐसी प्रक्रिया से संतुष्ट होता है जिसके तहत एक अनुचित सुनवाई, भले ही वैध निष्कासन का परिणाम न दे, फिर भी वैध निष्कासन निर्णय होने पर सदस्य को अपील के अधिकार से वंचित करने का प्रभाव डालेगी। ऐसा वंचना एक शक्तिशाली परिणाम है जो कानूनन शून्यता से प्राप्त किया जा सकता है; और यह कोई मामूली बात नहीं है जिसे इस आधार पर उचित ठहराया जा सके कि प्राकृतिक न्याय का अर्थ पूर्ण न्याय नहीं है। एक सामान्य नियम के रूप में, किसी भी स्थिति में, मेरा मानना है कि परीक्षण निकाय में प्राकृतिक न्याय की विफलता को अपीलीय निकाय में प्राकृतिक न्याय की पर्याप्तता से ठीक नहीं किया जा सकता है।”

59. कैल्विन बनाम कैर⁴⁵ (संक्षेप में "कैल्विन") मामले में, प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति ने लीरी सिद्धांत को केवल एक योग्य समर्थन दिया। लॉयड बनाम मैकमोहन⁴⁶ मामले में, लॉर्ड टेम्पलमैन ने कैल्विन सिद्धांत पर विचार किया, लेकिन टिप्पणी की कि सामान्य सिद्धांत निर्धारित करने के बजाय, उस मामले में उत्पन्न होने वाले प्रश्न का उत्तर उसमें लागू विशेष वैधानिक प्रावधानों पर विचार करके दिया जाना चाहिए। उस मामले में, पूर्ण अपीलों (जहाँ सभी साक्ष्यों की जाँच की जा सकती है) और केवल विधि के प्रश्नों पर सीमित अपीलों (जहाँ अपीलीय निकाय तथ्यों के निष्कर्षों की जाँच नहीं करता) के बीच अंतर किया गया था।

60. भारतीय न्यायालयों ने लीरी सिद्धांत को एक नियम⁴⁷ और कैल्विन सिद्धांत को एक अपवाद⁴⁸ के रूप में लागू किया है। ऐसा संस्थागत संरचना के कारण अधिक है क्योंकि रिट न्यायालय आमतौर पर तथ्यों की जाँच नहीं करता है और प्रशासनिक कार्यवाही की न्यायिक पुनर्विलोकन निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित होती है, न कि स्वयं निर्णय तक। हमारे विचार में, अपील का प्रावधान इस धारणा पर आधारित नहीं होना चाहिए कि अपीलीय निकाय गलती नहीं कर सकता। जब किसी पक्ष को अपना पक्ष रखने का अवसर नहीं दिया जाता है, तो प्रारंभिक निर्णय अपीलीय प्राधिकारी को निष्पक्ष और न्यायसंगत समाधान प्राप्त करने में सार्थक मार्गदर्शन प्रदान करने में विफल रहता है।

61. इस संदर्भ में, प्रोफेसर वेड⁴⁹ ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

“सिद्धांत रूप में, दोनों चरणों में प्राकृतिक न्याय का पालन होना चाहिए... यदि पहले चरण में प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन होता है, तो अपील का अधिकार

अपील का वास्तविक अधिकार नहीं, बल्कि एक सुधारित प्रारंभिक सुनवाई है: निष्पक्ष सुनवाई के बाद अपील की बजाय, प्रक्रिया एक अनुचित सुनवाई और उसके बाद निष्पक्ष सुनवाई तक सीमित हो जाती है”

62. प्रोफेसर लॉरेंस ट्राइब⁵⁰ ने उचित रूप से टिप्पणी की थी कि परिणाम चाहे जो भी हो, एक मूल्यवान मानवीय संपर्क जिसमें प्रभावित व्यक्ति कम से कम उस निर्णय में भाग लेने की संतुष्टि का अनुभव करता है उससे गहन रूप से संबंधित हो, अत्यंत महत्वपूर्ण है:

“सुने जाने का अधिकार तथा यह जानने का अधिकार कि निर्णय क्यों लिया गया, दोनों ही विश्लेषणात्मक रूप से किसी भिन्न परिणाम प्राप्त करने के अधिकार से पृथक् हैं; ये परस्पर संवाद के अधिकार इस मूलभूत विचार को अभिव्यक्त करते हैं कि वस्तु होने के विपरीत, व्यक्ति होने के लिए कम से कम इतना अवश्य है कि उसके साथ किए जाने वाले कार्य के संबंध में उससे परामर्श किया जाए।”

63. इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड अकाउंटेंट्स बनाम एल. के. रत्ना⁵¹ मामले में, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने जे. मेगारी द्वारा अपनाई गई स्थिति का समर्थन किया। इस तर्क को खारिज करते हुए कि चार्टर्ड अकाउंटेंट्स अधिनियम, 1949 की धारा 22-क के तहत उच्च न्यायालय में अपील करने से प्रारंभिक दोष का निवारण हो सकता है, जे. पाठक ने आदेश को शून्य, अमान्य और निष्प्रभावी घोषित कर दिया। यह निर्णय पहले दिए गए दो सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद नूह⁵² और मैसूर राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम मिर्जा खासिम⁵³, के अनुरूप था, जिन दोनों ने यह स्थापित किया था कि अपील उस मामले को मान्य नहीं कर सकती जो स्पष्ट रूप से शून्य है।

64. सर्वोच्च न्यायालय ने कैल्विन सिद्धांत का प्रयोग केवल असाधारण परिस्थितियों में ही किया है। उदाहरण के लिए, चरण लाल साहू बनाम भारत संघ⁵⁴ मामले में, भोपाल गैस रिसाव आपदा (दावों का प्रसंस्करण) अधिनियम, 1985 की वैधता को चुनौती देने वाले एक मामले में, न्यायालय ने कैल्विन सिद्धांत को लागू किया, इस तथ्य को देखते हुए कि निपटान निधि को भोपाल गैस रिसाव त्रासदी के पीड़ितों को उचित मुआवजे की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त माना गया था, यह माना गया कि पीड़ितों की पहले सुनवाई न करने के आधार पर शिकायत वास्तव में नहीं चलेगी। इसने दर्ज किया कि “एक बड़ा अधिकार करने के लिए” आखिरकार कभी-कभी “थोड़ा गलत करने” की अनुमति होती है।

65. वर्तमान मामले में यह भी मौलिक महत्व की बात है कि नियम 5(ख) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि पुनरीक्षण के लिए आवेदन केवल कानून के आधार पर ही स्वीकार किया जा सकता है, तथ्यों के आधार पर नहीं:

“(ख) किसी भी पक्ष द्वारा पुनरीक्षण के लिए आवेदन केवल तभी स्वीकार किया जाएगा जब वह कानून के आधार पर हो, तथ्यों के आधार पर नहीं।”

66. इसके अतिरिक्त, कलेक्टर और पुनरीक्षण आयुक्त के आदेश (आदेशों) का अवलोकन करने से यह भी पता चलेगा कि वे व्यावहारिक रूप से समान हैं। प्रारंभिक चरण में एक अप्रभावी सुनवाई इसलिए संपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया को दूषित कर देती है, जिससे बाद के चरणों में त्रुटिपूर्ण आदेशों की एक श्रृंखला बन जाती है। प्रभावित व्यक्ति को सुनवाई प्रदान करने से, प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा तथ्यों या अन्य प्रासंगिक परिस्थितियों की अनदेखी में निर्णय लेने का जोखिम कम हो जाता है, क्योंकि इससे सभी प्रासंगिक मुद्दों को प्रकाश में लाया जा सकता है। यह प्रक्रिया न केवल प्रशासन को सही निर्णय लेने में सहायता करती है, बल्कि न्यायालयों को ऐसी कार्रवाइयों की अधिक प्रभावी समीक्षा करने में भी सक्षम बनाती है। प्राकृतिक न्याय का प्राथमिक उद्देश्य प्रशासन को शुरू में ही ठोस निर्णय लेने में सहायता करना है, जिससे बाद में निर्णयों के पलट जाने की संभावना कम हो जाती है। इसका महत्व पहली नज़र में ही निष्पक्ष और सुविचारित निर्णय लेने को बढ़ावा देने में निहित है।

67. उपरोक्त चर्चा के बाद, यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि प्रारंभिक चरण में किसी दोष को आमतौर पर अपीलीय चरण में ठीक नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि ऐसे मामलों में भी जहाँ अपीलीय चरण में 'पूर्ण अधिकार क्षेत्र' उपलब्ध हो सकता है, न्यायालयों के पास सुनवाई के अवसर के लिए इसे मूल चरण में स्थानांतरित करने का विवेकाधिकार होना चाहिए। इसलिए, अपीलार्थी के चयन को अपास्त करने का एकपक्षीय निर्णय अमान्य है।

V. निष्कर्ष

68. 'सभी पक्षों को सुनवाई का अवसर देने' का सिद्धांत न्याय की आधारशिला है, जो यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी व्यक्ति को बिना सुने दंडित न किया जाए। यह सिद्धांत न्याय को एक तकनीकी औपचारिकता से एक मानवीय प्रयास में बदल देता है। यह मनमाने निर्णय-निर्माण से संरक्षण प्रदान करता है और विशेष रूप से उन मामलों में अत्यंत आवश्यक है जहाँ पक्षकारों के बीच शक्ति का असंतुलन हो।⁵⁵

69. पक्षपात का आरोप तभी साबित हो सकता है जब सुनवाई का अवसर दिए जाने के बाद तथ्य स्थापित हो जाएँ। इस प्रक्रिया के लिए एक निष्पक्ष और पारदर्शी प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जिसमें संबंधित पक्षों को अपना पक्ष रखने का पर्याप्त अवसर दिया जाए। ऐसा अवसर आरोपी पक्ष या प्रभावित व्यक्तियों को आरोपों का जवाब देने, साक्ष्य प्रस्तुत करने और निर्णय लेने की प्रक्रिया के संबंध में किसी भी संदेह को स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करता है। इसलिए, पक्षपात के आरोप को साबित करने के लिए, यह अनिवार्य है कि निष्पक्ष सुनवाई के प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का पालन किया जाए, ताकि संबंधित तथ्यों की स्थापना हो सके।

70. पूर्वोक्त के आलोक में, हम न्यायमूर्ति के.वी. विश्वनाथन की अपील (अपीलों) को स्वीकार करने और खंडपीठ के निर्णय को अपास्त करने की राय को बरकरार रखते हैं। परिणामस्वरूप, यह न्यायालय न्यायमूर्ति जे.के. माहेश्वरी द्वारा दी गई राय का समर्थन करने में असमर्थ है।

71. चूँकि चयन वर्ष 1998 का है, और अपीलार्थी अंतरिम आदेशों के तहत पच्चीस वर्षों से अधिक समय से लगातार पद पर बने हुए हैं और अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं, इसलिए मामले को नए सिरे से जाँच के लिए वापस भेजना व्यावहारिक नहीं होगा और नियुक्त व्यक्तियों के साथ अन्याय होगा। समय अंतराल को इस बात को ध्यान में रखकर बेहतर ढंग से समझा जा सकता है कि अपीलार्थीगण में से एक पहले ही सेवानिवृत्त हो चुका है।

72. उपरोक्त शर्तों के अनुसार मामलों का निराकरण कर दिया गया है तथा उन्हें स्वीकार किया जाता है। पक्षकार अपना-अपना खर्च स्वयं वहन करेंगे।”

मामले का परिणाम: अपीलें स्वीकार की जाती हैं।

अनुवाद द्वारा- अंकित, कनिष्ठ न्यायिक अनुवादक, उच्च न्यायालय म.प्र.जबलपुर

1. (1998) 2 एम.पी. डब्ल्यू.एन. 39
2. (1996) 3 एस सी सी 364
3. (1969) 2 एस सी सी 262
4. ए.के. कृपक बनाम भारत संघ (1969) 2 एससीसी 262; जे. महापात्रा एंड कंपनी बनाम उड़ीसा राज्य, (1984) 4 एससीसी 103, अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, (1985) 4 एससीसी 417, कीर्ति देशमांकर बनाम भारत संघ, (1991) 1 एससीसी 104, गुरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1997) 10 एससीसी 641, उत्कल विश्वविद्यालय बनाम नृसिंह चरण सारंगी, (1999) 2 एससीसी 193, जी.एन. नायक बनाम गोवा विश्वविद्यालय, (2002) 2 एससीसी 712, तमिलनाडु सरकार बनाम मुनुस्वामी मुदलियार, 1988 सप्प एससीसी 651: एआईआर 1988 एससी 2232, बिहार राज्य खनिज विकास निगम बनाम एनकॉन बिल्डर्स (आई) (पी) लिमिटेड, (2003) 7 एससीसी 418।
5. ए.पी. राज्य बनाम मैकडॉवेल एंड कंपनी, (1996) 3 एससीसी 709; टाटा सेलुलर बनाम भारत संघ, (1994) 6 एससीसी 651; और सिविल सेवा संघ परिषद बनाम सिविल सेवा मंत्री, 1985 एसी 374 (एचएल); मोहम्मद मुस्तफा बनाम भारत संघ, (2022) 1 एससीसी 294।
6. सिविल सेवा संघ परिषद बनाम सिविल सेवा मंत्री, 1985 एसी 374।
7. दलपत अबासाहेब सोलुंके बनाम बी.एस. महाजन, (1990) 1 एससीसी 305; बद्रीनाथ बनाम राज्य टी.एन., (2000) 8 एससीसी 395, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेटल हेल्थ एंड न्यूरो साइंसेज बनाम के. कल्याण रमन, 1992 सप्प (2) एससीसी 481; आई.पी.एस. दीवान बनाम भारत संघ, (1995) 3 एससीसी 383; यूपीएससी बनाम हिरण्यलाल देव, (1988) 2 एससीसी 242; ; एम.वी. थिम्मैया बनाम यूपीएससी, (2008) 2 एससीसी 119 और यूपीएससी बनाम एम. साथिया प्रिया, (2018) 15 एससीसी 796।
8. ओम कुमार बनाम भारत संघ, (2001) 2 एससीसी 386 : 2001 एससीसी (एल एंड एस) 1039; भारत संघ बनाम जी. गणयुथम, (1997) 7 एससीसी 463 : 1997 एससीसी (एल एंड एस) 1806।
9. मेनका गांधी बनाम भारत 10. दूसरी ओर, न्यायमूर्ति जे.के. माहेश्वरी ने अपीलार्थीगण की नियुक्ति अपास्त करने के निर्णय को बरकरार रखा और यह राय दी कि प्राकृतिक न्याय का पहला अंग, अर्थात् 'पक्षपात के विरुद्ध नियम', निर्विवादित रूप से सिद्ध हो चुका था, क्योंकि पक्षपात की युक्तियुक्त संभावना स्थापित हो चुकी थी। पक्षकार न बनाए जाने की दलील को एक व्यर्थ औपचारिकता माना गया। आगे यह भी माना गया कि जब तक पक्षपात सिद्ध न हो जाए, प्रारंभिक चरण में केवल गैर-संयोजन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं करता। संघ, (1978) 1 एससीसी 248
10. एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, (1990) 4 एससीसी 594; सीमेंस इंजीनियरिंग एंड मैनुफैक्चरिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम भारत संघ, (1976) 2 एससीसी 981; सीसीआई बनाम सेल, (2010) 10 एससीसी 744; क्रांति एसोसिएट्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान, (2010) 9 एससीसी 496
11. एके क्रेपक बनाम भारत संघ (1969) 2 एससीसी 262
12. डाइम्स बनाम द प्रोपराइटर्स ऑफ द ग्रैंड जंक्शन कैनाल, (1852) 3 HLC 759
13. (1924) 1 KB 256
14. (1969) 1 QB 577
15. आर विरुद्ध गफ, 1993 एसी 646
16. (2002) 1 ऑल ईआर 465
17. माणक लाल बनाम डॉ. प्रेम चंद सिंघवी 1957 एससीसी ऑनलाइन एससी 10; रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ (1987) 4 एससीसी 611; रतन लाल शर्मा बनाम प्रबंध समिति, डॉ. हरि राम (सह-शिक्षा) उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, (1993) 4 एससीसी 10; एस पार्थसारथी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1974) 3 एससीसी 459; एसके गोलाप और अन्य बनाम भुबन चंद्रा

पांडा 1990 एससीसी ऑनलाइन कैल 264; जीएन नायक बनाम गोवा विश्वविद्यालय (2002) 2 एससीसी 712

18. 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3219

19. भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल, (1985) 3 एससीसी 398; स्वदेश कॉटन मिल्स बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 664

20. (1984) 4 एससीसी 103

21. एच. डब्ल्यू आर. वेड, प्रशासनिक कानून (पाँचवाँ संस्करण)

22. (2002) 9 एससीसी 732

23. (1984) 2 एससीसी 682

24. (1985) 4 एससीसी 417

25. 1991 अनुपूरक (1) एससीसी 313

26. (1964) एसी 40

27. (1978) 1 एससीसी 405

28. (1981) 1 एससीसी 664

29. (1978) 1 एससीसी 248

30. एच डब्ल्यू आर वेड और सी एफ फोर्सिथ, प्रशासनिक कानून (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 11 वां संस्करण, 2014)

31. ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे नगर निगम (1985) 3 एससीसी 545)

32. (1980) 4 एस सी सी 379

33. स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम भारत संघ (1981) 1 एससीसी 664; अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम मंसूर अली खान (200) 7 एससीसी 529

34. आई.पी. मैसी, प्रशासनिक कानून (आठवां संस्करण, 2012)

35. (1996) 3 एससीसी 364

36. (2015) 8 एससीसी 519

37. (2021) 19 एससीसी 706

38. (2023) 13 एससीसी 401

39. राज्य सरकार बेघर हरिजन कर्मचारी संघ बनाम कर्नाटक राज्य (2001) 1 एससीसी 610

40. ईस्ट इंडिया कमर्शियल कंपनी लिमिटेड बनाम सीमा शुल्क कलेक्टर एआईआर 1962 एससी 1893; उमा नाथ पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2009) 12 एससीसी 40

41. 1964 एसी 40

42. ऑस्ट्रेलियाई वर्कर्स यूनियन बनाम बोवेन (संख्या 2) (1948) 77 सी.एल.आर. 601

43. [1961] एसी 945 (पीसी)

44. (1970) 2 ऑल ई आर 713

45. (1979) 2 डब्ल्यू एल आर 755

46. (1987) 1 एसी 625

47. चार्टर्ड अकाउंटेंट्स संस्थान बनाम एल. के. रत्न (1986) 4 एससीसी 537; फ़रीद अहमद बनाम अहमदाबाद नगर पालिका एआईआर 1976 एससी 2095; श्री मंदिर सीता रामजी बनाम दिल्ली सरकार (1975) 4 एससीसी 298; मैसूर एसआरटी कॉर्प बनाम मिर्जा खासिम एआईआर 1977 एससी 747; लक्ष्मीधर बनाम उड़ीसा राज्य एआईआर 1974 ओरी 127; काशीराम डालमिया बनाम राज्य एआईआर 1978 पैट 265; जी राजलक्ष्मी बनाम अपीलीय प्राधिकारी एआईआर 1980 एपी 100; सेराजुद्दीन कंपनी बनाम उड़ीसा राज्य एआईआर 1974 कैल 296

48. चरण लाल साहू बनाम भारत संघ (1990) 1 एससीसी 613; जयंतीलाल रतनचंद शाह बनाम भारतीय रिजर्व बैंक (1996) 9 एससीसी 650; यूनाइटेड प्लांटर्स एसोसिएशन ऑफ़ सदर्न इंडिया बनाम केजी संगमेश्वरन (1997) 4 एससीसी 741

49. एच. डब्ल्यू आर. वेड, प्रशासनिक कानून (ऑक्सफोर्ड: क्लेरेंडन प्रेस 1982)

50. लॉरेंस एच. ट्राइब, 'अमेरिकन कॉन्स्टिट्यूशन लॉ' (द फाउंडेशन प्रेस 1978)

51. (1986) 4 एससीसी 537
52. (1958) एससीआर 595
53. (1977) 2 एससीसी 457
54. (1990) 1 एससीसी 613
55. उपेन्द्र बक्सी, 'प्रस्तावना: भारतीय प्रशासनिक मिथक और वास्तविकता कानून', आईपी मैसी (एड) में 'प्रशासनिक कानून' (8 वां संस्करण, ईबीसी 2012)